Chapter-2

अध्याय - 2

नवजागरण और हिन्दी साहित्य

नवजागरण और हिन्दी साहित्य

1. नवजागरण का उद्भव और विकास

2. पूर्ववर्ती साहित्य एवं नवजागरण

3. लोकजागरण और नवजागरण में अन्तर

4. नवजागरण और विविध साहित्यिक विधाएँ

1. नवजागरण का उद्‌भव और विकास

उत्पत्ति विदेश में :--

नवजागृति शब्द को अंग्रेजी में 'रेनेसा' कहा जाता है। रेनेसा या रिनेसांस' फ्रेन्च शब्द है जिसका अर्थ पुनर्जन्म (Rebirth) होता है। " रिनेसांस शब्द फ्रांसीसी इतिहासकार मिशले (1798-1874 ई.) ने गढ़ा था और बुर्कहार्ट (1818- 1897 ई.) द्वारा वह ऐतिहासिक अवधारणा में विकसित हुआ।'' 1

प्राचीन ग्रीक, रोमन साहित्य एवं संस्कृति का पुनर्जन्म यानी नवजागृति ऐसा अर्थ माना जाता है। वैसे यह पूर्ण सच नहीं है। " रिनेसांस' शब्द का अर्थ समय-समय पर परिवर्तन होता है। 16वीं सदी के निकट इसका अर्थ था लैटिन और ग्रीक साहित्य का पुनरुथान। इटली निवासी इस आंदोलन को 'रिनेसिमेन्टो' या क्लासिकी भाषाओं और साहित्य का 'पुनर्जन्म' कहते हैं। यह विद्या या कला का 'पुनर्जन्म' या 'पुनरुत्थान' मध्ययुग और आधुनिक काल को अलग करने के लिए कल्पित किया गया था।'' 2

नवजागृति से मानवता का मूल्य बढ़ा और हर क्षेत्र में विकास तेजी से होने लगा। यानी हम यह कह सकते हैं कि प्राचीन काल में विद्या, कला, साहित्य एवं संस्कार के पुनर्जन्म के आन्दोलन को नवजागृति के नाम से पहचाना जाता हैं। इसके बारे में कई विद्वानों ने अपने मत दिये है। कुछ साहित्यकारों के अनुसार नवंजागृति की व्याख्या इस प्रकार है।

जवाहरलाल नेहरू के अनुसार- " विद्या का पुनर्जन्म एवं कला, साहित्य, विज्ञान और युरोप के देशों की भाषाओं का विकास यानी नवजागृति''

इतिहासकार डेविस के अनुसार--" मनुष्य के स्वातंत्र्यप्रिय और साहसिक विचार जो मध्ययुग दरमियान धर्म की जड़ता और संकुचितता के वातावरण में स्थगित हो गये थे, उनका पुनर्जन्म और मुक्ति यानी नवजागृति''

इतिहासकार मोरियट के अनुसार--" नवजागृति यानी नई दुनिया और नये युग का सर्जन।''

स्वेन के अनुसार--" मध्ययुग के अंत में होने वाले तमाम बौद्धिक विकास को ही सामूहिक रूप से नवजागृति कहा जाता है, यानी बौद्धिक परिवर्तन ही नवजागृति है।''

" नवजागरण बौद्धिक और सौन्दर्य-विषयक जागृति तथा धर्मनिरपेक्ष संस्कृति की एक लहर है जो संभवत: 14वीं सदी में इटली में उद्‌भव हुई और 15वीं सदी के उत्तरार्द्ध तथा 16वीं सदी के शुरू

में इटली अपनी पराकाष्ठा पर पहुंची, और बाद के दिनों में फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैण्ड तथा स्पेन में उसका उत्थान और पतन हुआ।" 3

जब मनुष्य की सोच चिंतन में परिवर्तन आया और मनुष्य पारंपरिक रूढ़िगत नियमों से हटकर वैज्ञानिक अनुभवों के द्वारा संसार के रहस्यों का पता लगाने तथा कला और साहित्य द्वारा जीवन को सरस और सुखद बनाने की प्रवृत्ति प्रबल होती गई तब ही 'नवजागरण' का प्रारम्भ माना जाता है । मध्यकालीन समय में मनुष्य धार्मिक नियमों के कठोर अनुशासन और नियमों से जकड़ गया था और उससे मुक्ति पाने के लिए छटपटा रहा था। सर्वत्र धार्मिक अंधश्रद्धा फैली हुई थी। मनुष्य खुद को एक पिंजरे में बंद पंछी की भाँति महसूस करता था। वह मुक्त होकर जीना चाहता था लेकिन धर्म, परंपरा उसके बीच में आ रहे थे। ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति अपने स्वतंत्र विचार प्रकट करने के लिए व्याकुल हो उठा। इटली नवजागरण की जन्मभूमि मानी जाती है, जिसके निम्न कारण हैं---

1.आरबों का योगदान

प्रा. होयलैंड के अनुसार जब युरोप अज्ञान और अंधश्रद्धा से घिरा हुआ था तभी अरबों ने उनको ज्ञानदीप दिया। अरबों ने युरोप के स्पेन, सिसली तथा सार्डिनिया पर विजय प्राप्त की तथा अपने शासनकाल के दरम्यान कला और विद्या में प्रगति लाते हुए विद्यापीठों की स्थापना की। उन विद्यापीठों में ग्रीक और लेटिन भाषाओं एवं ग्रंथो का अभ्यास किया जात था। आरबों ने युरोपवासियों को प्लेटों तथा एरिस्टोटल जैसे तत्वचिंतको के ग्रंथो की माहिती दी, जिसे युरोपवासियों ने न केवल अपनाया पर उनकी परम्परा को अपनाते हुए नवजागृति का सर्जन किया, इसी कारण से अरब को नवजागृति का प्रथम ज्योतिर्धर माना जाता है।

2. कोन्स्टेन्टिनोपल का पतन

ई. स. 1453 में तुर्को ने कोन्स्टेन्टिनोपल जीत लिया। तुर्क असहिष्णु और क्रूर थे। उन्होंने ख्रिस्तियों पर इतने अत्याचार किए कि ख्रिस्तियों के धर्मगुरू एवं विद्वान कलाकार तत्वज्ञानी अपने ग्रंथो को लेकर इटली चले गये और वहाँ के धनिक व्यापार एवं लोगों ने न केवल उनका स्वागत किया पर उच्च शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करके ग्रीक एवं लेटिन भाषाओं तथा ग्रंथों का अभ्यास करने का प्रोत्साहन दिया। जिससे यूरोप के विभिन्न प्रदेशों में ज्ञान का तेजी से प्रचार-प्रसार हुआ।

3. धर्मरक्षक युद्ध

मध्ययुग के दरम्यान अपनी पवित्र भूमि जेरूसलम को तुर्को के पास से लेने के लिए पश्चिमी यूरोप के ख्रिस्तियों एवं मुसलमानों के बीच युद्ध हुआ, जिसे धर्मरक्षक युद्ध कहा जाता है। इस धर्मरक्षक

युद्ध से यूरोप एशिया की भव्य संस्कृति के संपर्क में आया और अपने अल्पज्ञान का पता चला। जिसका परिणाम यह हुआ कि सामंतशाही का पतन हुआ और ऊँच-नीच का भेद भाव दूर हुआ। साथ ही व्यापार का विकास हुआ और यूरोप के लोगों मे भौगोलकि ज्ञान की बढ़ोत्तरी हुई।

4. छापकला (छापखाने) की शोध

प्रचीनग्रंथों की हस्तप्रतों कम संख्या में और मंहगी होने के कारण नये विचारों का प्रचार-प्रसार तेजी से हो रहा था, लेकिन उसी समय चीन ने कागज और छापेखाने की शोध की। अरब वालों के द्वारा यूरोप को यह सौगात मिली। इटली के लोगें ने अच्छे कागज बनाए तथा कई जगह पर छापखाने भी शुरू किये। जिसके कारण प्राचीन ग्रंथो एवं बाइबल की नकलों को छापकर जनता के सामने ले जाया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों की अंधश्रद्धा तथा संकुचितता दूर हुई तथा लोगों में नूतनदृष्टि और नए विचारों का जन्म हुआ।

5. सामंतशाही का पतन

मध्ययुगीन सामंतशाही नवजागृति के मार्ग में अवरोध रूप था। राज्य में सामंतों का बहुत वर्चस्व था। वे प्रजा से न केवल कर वसूल करते पर अत्याचार भी करते। लेकिन धर्मरक्षक युद्ध, छापकला की शोध, कारतूस की शोध, राष्ट्रीय राजाशाही का उदय, व्यापारी वर्ग का उदय, भौगोलिक शोधखोज, बाइबल का प्रादेशिक भाषाओं में अनुवाद आदि के कारण सामंत तथा सामंतशाही का पतन हुआ।

6. शहरों की प्रगति

बाजारों की जरूरत, विभिन्न व्यापार-उद्योगों की स्थापना और विकास तथा सामंतशाही की वजह से अलग-अलग जगहों पर नये शहर बस गये। व्यापार के विकास की वजह से व्यापारी वर्ग समृद्ध बना और वे शहर में आकर बसे। धनवान होने के कारण वे बन्धनों से मुक्त हुए और स्वतंत्र रूप से सोचने लगे। जिसकी वजह से व्यापार के अलावा साहित्य कला और विज्ञान जैसे विषयों में प्रगति हुई तथा लोगों की सोचने की दृष्टि में व्यापकता आने लगी।

7. तर्कवाद-बुद्धिवाद और बौद्धिक जागृति

मध्ययुग के समय यूरोप के आध्यात्मिक विद्यालय जो देवड़ के आश्रित चल रहे थे और गणित, विज्ञान जैसे विषयों की जगह धार्मिक शिक्षण के ऊपर ज्यादा जोर दिया गया। अरब वालों के सम्पर्क की वजह से यूरोप में विद्यापीठों की स्थापना हुई, जिसकी वजह से समाज के लोगों की आकांक्षाएं बढ़ने लगी और तर्कबाद तथा बुद्धिवाद का प्रारम्भ हुआ। जस्टिनियन, प्लेटो एवं ऐरिस्टोटल जैसे तत्वचिंतको के द्वारा लिखित ग्रंथो का अभ्यास होने लगा। मनुष्य अब तर्क की कसौटी पार करने वाली बात को

ही स्वीकृति देते, जिससे मनुष्य की मानसिक स्थिति में न केवल परिवर्तन आया पर उनका बौद्धिक विकास भी हुआ।

8. भौगोलिक शोधखण्ड

भौगोलिक शोधखोड ने यूरोप की नवजागृति के विकास में अमूल्य योगदान दिया है। व्यापरियों की प्रतिस्पर्धा के कारण यूरोपियन व्यापारियों ने उनके प्रभाव क्षेत्र को बढ़ाने की शुरुआत की। उस समय मार्कोपोलों, कोलंबस, और वास्कोडिंगामा जैसे साहसिक मुसाफिरों ने एशिया तथा अफ्रीका के नये जलमार्ग एवं जमीनमार्ग ढूंढ़े। अपने व्यापार एवं धर्मप्रचार के उद्देश्य से यूरोपियन विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में पहुँच गए। वे दूसरे देश की संस्कृति के सम्पर्क में आए, जिसमें उनकी विचारधारा में काफी परिवर्तन आया।

9. नवजागृति के ज्योतिर्धर

भाग्यवश उस समय यूरोप में नवजागृति के विकास के लिए कुछ ज्योतिर्धर मिल गये। जैसे दान्ते, पेट्रार्क, बोकेशियो, माइकल ऐन्जलो, टोमसमूर, शेक्सपियर, लोरन्जो, रेफल आदि । इन सब साहित्यकारों, तथा कलाकरों तथा तत्वज्ञानियों के बगैर नवजागृति न होती ऐसा नहीं था पर यह निश्चित था कि अधूरी अवश्य रहती।

इस बारे में जगदीश चन्द्र जैन का मानना है कि--" युरोप के मध्ययुग और आधुनिक युग के बीच की संक्रान्ति की अवस्था का यह काल है जबकि ईसाई जीवन प्रणाली एवं जीवन दर्शन के स्थान पर यूनानी रोमीय जीवन प्रणाली और जीवन दर्शन से अनुप्रणित नयी चेतना का उद्‌भव हो रहा था। इस समय युरोप की संस्कृति में एक नूतन जीवन का संचार हुआ जो लगभग 16वीं शताब्दी के अन्त तक बना रहा। सन् 1453 का समय यूरोप के इतिहास का अत्यन्त महत्वपूर्ण समय है। जबकि रोमन राज्य की राजधानी और यूनानी विद्या के केन्द्र कुस्तन्तुनिया पर तुर्क लोगों ने विजय प्राप्त की। इस समय यहाँ के विद्वान हस्तलिखित ग्रन्थ लेकर पश्चिम की ओर चले गये और सारे युरोप में फैल गये। सबसे अधिक प्रश्रय उन्हें इटली में मिला जिससे यहाँ यूनानी साहित्य का अध्ययन आरम्भ हुआ। यूनानी विद्वान हजारो हस्तलिखित पुस्तकें लेकर इटली आये और अपनी आजीविका के लिए वहाँ पढ़ाने का काम करने लगे। प्रत्येक नगर में यूनानी विद्या का केन्द्र स्थापित हुआ। और दूर-दूर से लोग विद्योपार्जन के लिए आने लगे। इटली ललित कलाओं के क्षेत्र में युरोप का अगुआ बना और यूनानी विद्वानों द्वारा लायी हुई विद्या की चर्चा सर्वत्र फैलने लगी। यह वह समय था जब युरोप में भौतिकवाद प्रवृत्तियों के चरम शिखर पर पहुँचने के फलस्वरूप नये-नये आविष्कार हुए लम्बी यात्राओं से नये-नये

देशों की खोज हुई, छापखाने का ईजाद हुआ, धर्म और दर्शन का नया संस्करण हुआ बाइबल धर्माधिकारियों के चुंगल से निकलकर जनता के हाथ में जा पहुँची तथा सामंतशाही का ह्रास होने से राजनीति और समाज व्यवस्था में मौलिक क्रांति का सूत्रपात हुआ। परिणाम स्वरूप पश्चिमी युरोप, खास करके इटली, स्पेन, फ्रांस, जर्मनी और इंग्लैण्ड एक सांस्कृतिक चेतना से मुखरित हो उठे। ज्ञान की असीम पिपासा जागृत हो उठी तथा यूनान और रोम के प्राचीन साहित्य के अध्ययन के प्रति अभिरुचि जागृत हुई।'' 4

रोमी साहित्य के पतन तथा मसीही धर्म के उत्थान के साथ-साथ यूरोप के काव्य-शास्त्र के इतिहास में जो ' अंधकार युग' का सूत्रपात हुआ। 'नवजागरण काल' के साथ उसका अंत हुआ। नवजागरण को इटली में भाषा और साहित्य का पुनर्जन्म भी कहते हैं। पुनर्जन्म से तात्पर्य है कि पहले इन भाषा एवं साहित्य का जन्म हो चुका था लेकिन वह साहित्य एवं भाषा को समय एवं समाज भुला चुका था, जो इस नवजागरण काल में उभरकर सामने आया। इस काल में उन क्लासिक भाषा साहित्य, कला, विद्या का फिर से जन्म हुआ था इसलिए इसे पुनर्जन्म कहा जाता है। इसी पुनर्जन्म से प्राचीनकाल की बपौती का पुनरुत्थान हुआ, जो मानववादी संस्कृति के उदय में सहायक बना।

ग्रीक और रोम के ग्रंथों का अध्ययन स्वतंत्र ढंग से सोचने समझने और चीजों को व्याख्यायित करने में सहायक सिद्ध हुआ। इसी से मनुष्य अपनी छुपी हुई क्षमता और खूबी को समझ सका और नई-नई चीजों का सृजन कर सका।

" एंगेल्स ने उस ऐतिहासिक प्रक्रिया का संकेत देते हुए लिखा है कि राजशाही ने नगरों के बर्गरों के समर्थन से सामंती अभिजात वर्ग की सत्ता चूर कर दी और मूलतः राष्ट्रीयता पर आधारित महान राजतंत्रों की स्थापना की। दरअसल उस विधि के दौरान जिसे 'नवजागरण' नाम दिया गया है, युरोप में और इटली में (14 वीं सदी) से मैनू-फैक्टरी उत्पादन समृद्धि प्राप्त करता गया। सीमित राजतंत्र व्यापारी वर्ग के विकास में बहुत बड़ी रुकावट था। उन्होंने इसका विरोध किया, परिणाम स्वरूप सीमित राजतंत्र का निरंकुश राजतंत्र में परिवर्तन प्रारम्भ हो गया। व्यापार के विकास के साथ-साथ घरेलू बाजार और नगरों के निर्माण और विकास के फलस्वरूप रोमन चर्च के आधिपत्य के स्थान पर स्थानीय शासकों के स्वामित्व में जातीय या राष्ट्रीय राज्यों का उदय हुआ।'' 5

संक्रान्ति काल के कारण व्यापार में विकास तो हुआ साथ ही धार्मिक विकास भी हुआ। अब तक रूढ़िगत अंध विश्वासों पर जनता आंख बंद करके विश्वास करना छोड़ चुकी थी। अब मनुष्य

बातों से ज्यादा तथ्यों पर विश्वास करते थे और उनको अपनी बात को स्वतंत्रतापूर्वक रखने का अधिकार प्राप्त था। समाज के प्रत्येक क्षेत्र जैसे व्यापार, वाणिज्य, धर्म आदि मे परिवर्तन आने लगा। मनुष्य अपने हक के लिए लड़ने लगा। अब किसी भी प्रकार का शोषण बरदास्त नहीं किया जाता था। इसी पर आचार्य रामचन्द्र अपना विचार प्रकट करते हुए कहते हैं कि--" सामाजिक ,आर्थिक, संरचना से लेकर मूल्यों और लोगों की स्थितियों में भारी उलट फेर, प्रकृति विज्ञान का प्रारम्भ विश्व की खोज, चिंतन के केन्द्र में जीवन-जगत का आना, धर्मसिद्धान्तों के बजाय मनुष्य की तर्कबुद्धि को महत्व देना तथा कला साहित्य में मनुष्य के भावों , विचारों, उसकी स्थितियों तथा उससे समबद्ध प्रकृति का चित्रण - यह सब संक्रमण युग की विशेषता है जिसे 'नवजागरण' कहा गया है।'' 6

तत्युगीन समाज में रूपान्तर की इस प्रक्रिया के दौरान समूची सामाजिक आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक संरचना में अविश्वसनीय परिवर्तन आया। ऊॅच-नीच के भेदभाव दूर होने लगे। सामाजिक क्रांन्तियॉ सुलभ हुई। गरीब भी अब तवंगरी की दौड़ में शामिल हो गए। चिंतन के केन्द्र में ईश्वर की जगह मनुष्य को प्राथमिकता दी गई और परलोक के स्थान पर इहलोक को स्थान दिया गया। जिसने मनुष्य जाति- पांति के भावी प्रगति को सुनिश्चित बनाया।

नवजागरण की उत्पत्ति भारत में

भारत में शताब्दियों से अनेक परिवर्तन आये। पहले जब भारत में आर्यों का शासन था तब प्रजा धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक रूप से समृद्ध थी लेकिन मुस्लिमों ने जब भारत पर चढ़ाई की तब भारत में राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक रूप से अंधकार फैल गया था। राजनैतिक पराधीनता ने भारतवासियों को दुर्बलता, दरिद्रता, हीन-भावना और अन्य विकारों से ग्रस्त कर रखा था।

पाश्चात्य संस्कृति तथा सभ्यता के साथ हुआ यह साक्षात्कार भारतीय समाज के लिए एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी। कुछ सौ साल पहले मुगलों का आगमन हुआ था, पर वह लगभग आत्मसात हो चुका था। वे यहॉ लूटने आये थे, लेकिन वे लुटेरे से धीरे-धीरे शासक बन गये और बाद में यहीं के होकर रह गये।

इसी सन्दर्भ में भवानीलाल भारतीय का मत है कि--" विदेशी शासन से उत्पन्न भाव ने भारत के विशाल हिन्दू समाज के धार्मिक आध्यात्मिक तथा नैतिक मूल्यों को अपूरणीय क्षति पहुॅचाई थी। सहस्राब्दियों पूर्व के वैदिक औपनिषदिक तथा रामायण एवं महाभारतकालीन समाज में लोगों की इहलोक एवं परलोक के प्रति जो स्वस्थ दृष्टि थी वह तो अतीत की वस्तु हो ही गई थी, मौर्य और गुप्तयुगीन

समृद्धि तथा वैभव तत्कालीन लोगों की कलात्मक अभिरुचि, साहित्य, संगीत, काव्य तथा स्थापत्य के क्षेत्र की बढ़ती उपलब्धियॉं भी इतिहास की कहानियॉं बनकर रह गई। उस युग में बृहत्तर भारत का जैसा मानचित्र उभरकर आया और पूर्व के समुद्रपारीय देशों पर भारत की सांस्कृतिक विजय ने जैसी छाप छोड़ी वह सब अतीत की वस्तु बन गई थी। धर्म समाज तथा देश के सामान्य जनजीवन पर पराधीनता की काली घटाओं ने आपत्ति,, विपत्ति, शोषण और अभिशापों की जैसी उपल वृष्टि की, उससे लोगों के दुख और कष्ट बढ़े।'' 7

इस समय लोग आर्थिक रूप से इतने पराधीन हो गये थे कि गरीब और गरीब होने लगे थे और किसान मजदूर बनने लगे थे। गृह उद्योग, कुटीर उद्योग, खेती आदि नष्ट हो गये थे। अंग्रेजों का जुल्म दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा था। राज तो अंग्रेजों ने पहले ही ले लिया था बाद में उन लोगों ने व्यापार में भी अपनी मनमानी चलाई। परिणाम स्वरूप भारतीय जनता गरीब बनती गई और अंग्रेज और धनवान बनते गये। आर्थिक, राजनैतिक रूप से तो हम खत्म हो ही गये थे लेकिन धार्मिक रूप से भी हमारे धर्मगुरुओं ने भारतीय संस्कृति की जड़ को खोखला कर दिया था।

इसी पर अपना मन्तव्य प्रस्तुत करते हुए भवानीलाल जी लिखते हैं कि--" धर्म के नाम पर थोथा, कर्मकाण्ड, नैतिकता के नाम पर मिथ्या, अंधविश्वासों का प्रचलन तथा सुसंगत एवं उदार सामाजिक विधान स्थान पर कठोर आवर्जनाओं एवं विवर्जनाओं से नियन्त्रिंत श्रृंखलाबद्ध मूल रूढ़ियों का अनुपालन यह उस युग का सामन्य चित्र था। सर्वत्र संकीर्णता अनुदाता तथा जड़ता व्याप्त थी। मध्यकाल की इस गतिहीन प्राचीनता पोषक तथा युगदृष्टि विरहित जीवन मीमांसा ने जिन सामाजिक बुराइयों को जन्म दिया, उनमें बाल-विवाह का प्रचलन स्त्रियों को पर्दे में रखना, जन्म से जाति के आधार पर समाज का शतधा सहस्रधा विघटन ऊँच-नीच की भावना पर आधारित स्पृश्यास्पृश्य का भाव तथा दलित एवं निम्न वर्ग पर अकल्पनीय अत्याचार आदि उल्लेखनीय है।'' 8

इसी सन्दर्भ में वे आगे भी लिखते हैं कि--" उस युग में जो स्थिति हिन्दू धर्म की थी, समाज की दशा उससे किसी भी प्रकार बेहतर नहीं कही जा सकती थी, विगत शताब्दी का हिन्दू समाज सर्वथा जर्जरित और रोग ग्रस्त होकर मरणासन्न स्थिति तक पहुॅंच चुका था। जातिभेद के भयंकर रूप, दलित एवं शोषित वर्ग की सोचनीय स्थिति तथा नारी जाति पर सीमातीत अत्याचारों ने इस समाज को सर्वथा मुमूर्ष बना दिया था। आर्यों का वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित समाज विभिन्न आन्तरिक विग्रहों का शिकार होकर जीवन की अंतिम सॉंसे ले रहा था। इस काल के ब्राह्मण तेज से रहित, क्षत्रिय क्लीवता एवं दौर्बल्य से पीड़ित, वैश्य धनहीन एवं शूद्र स्वार्थों से पूरित थे। जब तथाकथित द्विजातियों की स्थिति

ही सोचनीय रही हो तो शूद्रों के अधःपतन में शंका ही क्या थी ? हिन्दू समाज में अत्यधिक श्रद्धा एवं सत्कार की भाजन साधु-सन्यासी वर्ग भी अविद्या एवं अज्ञानग्रस्त होकर अहंकार में चूर भंग, गांजा, अफीम और मदिरा जैसे मादक द्रव्यों का सेवन करने के कारण सर्वविध पतन के गर्त में गिर चुका था। जिस समाज के अग्रगन्ता ब्राह्मण और सन्यासी ही जब स्वकर्तव्य को विस्मृत कर पापाचरण में प्रवृत्त हो जाये तो अन्य लोगों की कथा ही क्या ? ऐसा लगता था कि मोहमयी मदिरा का पान कर समस्त समाज ही अज्ञानान्धकार में इतस्ततः अंधे की नाई भटक रहा है। जब उसके मार्गदर्शक एवं नेता कहलाने वाले व्यक्ति ही दिग्मूढ़ होकर पथभ्रष्ट हो चुके, तो अनुयायियों के लिए भी 'अंधनैव नीयमाना यथान्धाः' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए सर्वनाश की ओर अग्रसर होने के अतिरिक्त और कोई उपाय शेष नहीं रहा था।'' 9

इससे पहले हमे पता चलता है कि भारतीय प्रजा अन्दर ही अन्दर धर्म की वजह से खोखली हो गई थी। लोगों में एकता का अभाव था। लोगों में ऊँच-नीच के भाव आ गये थे। धर्म के नाम पर अनेक बुराइयॉं समाज में पनपनें लगी थी। इन्हीं बुराइयों के एवं कुरीतियों के कारण भारतीय समाज अनेक जातियों उपजातियों में विभाजित हो गया और लोगों की एकता समाप्त हो गई, जो भारत के पराजय का सबसे बड़ा कारण बना।

" 1757 ई. के युद्ध में अंग्रेजों की विजय ने सिद्ध किया कि इस जाति-पॉंति के वृद्धिगत प्रभुत्व को रोकना सहज नही है। प्लासी के युद्ध के ठीक एक सौ वर्ष पश्चात 1857 की हलचल में भारत ने अपने आपको स्वाधीन करने के लिए एक और प्रयत्न किया। एक बार फिर देशवासी विदेशी दासता की श्रृंखलाओं को तोड़कर स्वतन्त्रता के वातावरण में सॉंस लेने के लिए लालायित दीख पड़े। उन्हें लक्ष्य प्राप्ति में सफलता भी मिलती यदि राजपूत, सिक्ख तथा गोरखों ने अंग्रेजों का साथ नही दिया होता।'' 10

" भारत के लोग यह जानते थे कि उनका पतन क्यों हो सकता है। साक्षरता विवेक की रचना में सहायिका हो सकती है किंतु निरक्षर भी विवेकशील हो सकता है और उसका विवेक अधिक प्रभावपूर्ण और प्रभावशाली हो सकता है, लोग साक्षर भले ही न हों पर सदा से विवेकी रहे हैं और मूल्यों का मर्म समझते हैं। केवल आर्थिक और काम जगत के मूल्य उनके नियामक नहीं रहे हैं अपितु वे इनका संचालन भी धर्म और मुक्ति की दृष्टि से करते हैं। पुरुषार्थ चतुष्टय का योग ही भारत की कर्मभूमि की पीठिका का आधार स्तंभ है। तब तक सिद्धि की परिकल्पना भारत की मनीषा नहीं कर सकती जब तक की इन चारों की यौगिक उत्पत्ति से जीवन का संचालन न हो। फूट, परस्पर द्वेष,

घृणा, सत्ता का लोभ, ज्ञान, विज्ञान की कमी भारत के पराभव का कारण बनी थी और उन्होंने ऐसी प्रथाओं को जन्म दिया था जिनके कारण देश पराभूत हुआ था। इनके मर्म के अंतर तक भारत की म़नीषा पहुॅच चुकी थी और यह देश अपने इन मूल्यों की स्थापना के लिए व्याकुल था जिनके कारण यह मुक्त और विराट रहा है। सन् 1857 के विप्लव ने उन मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए राष्ट्रीय मंच की नींव रखी।

भारत भूमि मानव और धरती माता की उपासना की लीलाभूमि रही है। यहॉं भारतमाता की प्रतिष्ठा जनमानस में आरंभ हुई, विवेक ने इसे रूप दिया, ज्ञान ने इसे तेज दिया और संगठन ने इस रूप को विस्तार दिया। ब्रिटेन एक राष्ट्र था और संसार के अन्य राष्ट्रों पर उसने अपनी शक्ति के द्वारा आधिपत्य स्थापित किया, यह बात भारत के लोग समझने लगे थे और जिसे अंग्रेज उपनिवेश मानता था उसे हम अपनी माता मानने लगे। मां की रक्षा का भार देश ने उठाने का संकल्प किया और उस संकल्प का उद्‌घोष सन् 1857 के विप्लव से हुआ।'' 11

सन् 1857 में ईस्ट इण्डिया कंपनी के शासन के खिलाफ स्वाधीनता संग्राम हुआ जिसे आधुनिक इतिहासकार प्रथम स्वाधीनता संग्राम के नाम से अभिहित करते है। इस संग्राम में झॉसी की रानी लक्ष्मीबाई, तात्याटोपे, नानासाहब, शाहजफर, कुंवरसिंह, अवधी बेगम, हजरत महल जैसे बहादुरों ने हिस्सा लिया और युद्ध में हिन्दू और मुस्लिम एक जुट होकर अंग्रेजों के सामने अपने अधिकारों एवं भारतीय सस्कृति को अंग्रेजो से बचाने के लिए लड़े थे।

सन् 1857 के युद्ध को गदर के नाम से भी जाना जाता है। यह गदर होने के मुख्य पॉच कराण सामने आते हैं जो इस प्रकार है--

1.राजनीतिक कारण, 2.सामाजिक कारण, 3.आर्थिक कारण, 4.धार्मिक कारण और 5.सैनिक

राजनीतिक कारण

डलहौजी की युद्ध के द्वारा लैप्स की नीति, वह एक कुशासन द्वारा अपने राज्य को बढ़ाने की उग्र नीति थी। उससे सर्वत्र लोगों में आतंक छा गया। मुगल बादशाहों व शाहजादों के साथ उसका बर्ताव उनको दिल्ली से हटाकर अवध भेजने का विचार, अवध के नबाब वज़ीर को सिंहासन से उतारना, नाना साहब की पेन्शन बंद करना, छोटी-मोटी रियासतों को खत्म कर देना आदि बातों के कारण देश में अंग्रेजों के विरुद्ध असंतोष फैल गया। मुगल व मराठे दोनों सोचते थे कि अंग्रेजों ने उनके साम्राज्यों का विनाश किया है और दोनों ही अपना-अपना राज्य पुन: पाने के लिए लालायित थे।

सामाजिक व आर्थिक कारण

बहुत राज्यों के ब्रिटिश साम्राज्य में मिल जाने के कारण अनेको भारतीय अधिकारी अपनी जीविका से हाथ धो बैठे तथा बेकार हो गये यद्यपि वे चतुर और अनुभवी थे। इसके अतिरिक्त विजय करने के बाद जब अंग्रेजों ने भूमि का बन्दोबस्त बनाया तो जमीदारों के अधिकारों को रैयत के लिए छीन लिया गया। ईनाम कमीशन ने बम्बई में लगभग 20000 जागीरों का अपहरण कर लिया। बड़े-बड़े राजा महाराजा और अमीर निर्धन होने लगे। अतएव अंग्रेजों के प्रति उनका वैमनस्य स्वाभाविक था। अनेकों राज्यों को जीतकर ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेने के बाद भारतीय सेनाओं को भंग कर दिया गया जिससे अनेकों अनुभवी व महत्वाकांक्षी सैनिक बेकार हो गये।

धार्मिक कारण

हिन्दू व मुसलमान दोनों के दिलो में इस संदेह ने घर कर लिया कि अंग्रेज उनके प्राचीन रीति-रिवाजों को तोड़कर उनको ईसाई बनाना चाहते हैं। जिसको भारतीय अपने धर्म पर सीधा वार समझते थे। अंग्रेजो द्वारा कुछ नये कदम उठाये गये जैसे- ईसाई मत का प्रचार, 1834 के बाद अंग्रेजी शिक्षा का विशेष प्रचार, इसाई प्रचारकों के साथ सरकार की खास रियायतें, अंग्रेजों द्वारा प्राचीन रीति-रिवाजों जैसे बच्ची को दूध पीती करवाना, सती प्रथा, विधवा विवाह आदि के विरुद्ध चेष्टा, शैतानी रेलों व तारघरों का बनना तथा लोगों द्वारा धर्मपरिवर्तन करके ईसाई बनना ताकि उन्हें अपने पूर्वजों की सम्पत्ति पर अधिकार मिले- मुख्य कारण थे।

सैनिक कारण

गदर का सबसे महत्वपूर्ण कारण सैनिक कारण यह था कि भारतीय सेना अंग्रेजी सेना से अधिक बलवान एवं क्षमता वाली थी। गदर के पहले सेना में 13 वर्षों में चार बार विद्रोह हो चुका था। बंगाल की सेना में उच्चजाति के सैनिको की बहुतायत थी। साथ ही नियंत्रण में कमी थी जिसका कारण सेना का स्थानीय होना था। जब भारत से बाहर जाने के लिए भारत के सैनिक को विवश किया गया तो उच्च जाति हिन्दू जैसे ब्राह्मण और राजपूत के सैनिको ने सोचा कि वे लोग समुद्र पार ले जाकर उनका धर्म भ्रष्ट करना चाहते हैं। पंजाब को छोड़कर कहीं भी उचित अनुपात में सेना की व्यवस्था नहीं की गई थी। अंग्रेज सराकार ने एक नई राइफल निकाली थी, जिसमें कारतूस लगाने के पहले कारतूस को मुँह से खोलना पड़ता था और उस कारतूस पर चर्बी चढ़ी हुई थी, कतिपय उदाहरणों में वह चर्बी गायों व सुअरों की थी। जो हिन्दू व मुसलमान दोनों के लिए धर्मभ्रष्ट था जिससे दोनों कुपित हुए।'' 12

उपर्युक्त सभी कारणों से भारतीय प्रजा में विद्रोह की भावना उत्पन्न हुई। चारों तरफ बदले की आग भड़क उठी। इस विद्रोह से सारे देश में स्वतंत्रता आन्दोलन प्रारंभ हो गये। इसके सम्बन्ध में जानने वाले लिखते हैं- गंगा पार के इलाके में ही नहीं दोआब के जिलों में भी ग्रामीण जनता उठ खड़ी हुई थी। और जल्दी ही कोई आदमी गांव या शहर में नहीं बच पाया जो अंग्रेजों के विरुद्ध न उठ खड़ा हुआ हो। लेकिन यह विद्रोह पूरी तरह विफल हुआ जिसके निम्न तीन कारण थे--

1.हमारे देश के कुछ जातियों के लोग जैसे गोरखे, शिन्दे, खोड़कर आदि अंग्रेजों की तरफ से युद्ध कर रहे थे।

2.हमारे पास आयोजन सर्वसामान्य नेतृत्व एवं आधुनिक हथियारों की कमी थी जबकि अंग्रेजों के पास यह सब कुछ था।

3.क्रिमिनियम युद्ध कर वापस जाने वाली ब्रिटिश फौज को भारत बुलाया गया। जिससे अंग्रेजों के पास ज्यादा फौज हो गई थी।

उपर्युक्त कारणों से भारत देश अंग्रेजों से हार गया। परिणाम स्वरूप लगभग पूरा देश अंग्रेजी साम्राज्य की छत्रछाया में आ गया।

" गदर का सबसे प्रथम परिणाम यह हुआ कि 1858 में पार्लियामेंट ने एक एक्ट बनाकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी और बोर्ड आफ कन्ट्रोल तोड़ दिये। भारत का शासन भारतीय अंग्रेजी सरकार के हाथों में आ गया। गवर्नर जनरल को वायसराय की भी उपाधि दी गई तथा उसका उत्तरदायित्व ब्रिटिश पार्लियामेंट के विदेश मंत्री पर पड़ा।

नवम्बर 1858 में महारानी विक्टोरिया ने एक घोषणा निकाली जो भारतीय जजों व शासको के लिए थी, जिसमे धार्मिक सहिष्णुता का आश्वासन दिया गया था तथा सब के साथ समान व्यवहार किया जाय इस सिद्धान्त का अंग्रेजी राज्य में पालन किया जाएगा। केवल उन लोगों को छोड़कर जिन्होंने भयंकर अपराध किये थे, समस्त राजद्रोहियों को क्षमा कर दिया जाएगा। जिन लोगों को जो अधिकार व सुविधायें मिली हुई है व जिन लोगों से संधियां हुई है उनको सुरक्षित रक्खा जाएगा। इसके अतिरिक्त जो लोग जिस पद के लिए शिक्षित योग्य व विश्वास पात्र होगें उनको वह पद देते समय जाति, रंग व धर्म का कोई विचार नहीं किया जायेगा। घोषणा में यह भी कहा गया कि ब्रिटिश साम्रज्य को बढ़ाने की भावना नहीं रक्खी जायेगी और वायदा किया गया कि भारतीय शासकों के अधिकारों गौरव व सम्मान की रक्षा की जाएगी। भारतीय शासकों को दत्तक पुत्र लेने की सनदें प्रदान की गयी। भारतीयों रियासतों को ब्रिटिश साम्राज्य में नहीं मिलाया जाएगा। परन्तु उनके अधिकार सीमित कर दिये

व उनकी स्पष्ट व्याख्या की गई। वे शासक बिना ब्रिटिश सरकार की अनुमति के किसी भी देशी राजा से सम्बन्ध नहीं रख सकते थे। उनकी सैनिक शक्ति कम कर दी गई।'' 13

महारानी विक्टोरिया के इस घोषणा पत्र से पूरे भारत देश में आशा बंध गई कि अब अंग्रेजों का अत्याचार भारतवासियों पर कम होगा। वे अब खुले आसमान में जी पायेंगे। सन् 1860 तक देश में पुन: शांति और व्यवस्था स्थापित हो गई। फलत: देश के सामाजिक, राजनीतिक धार्मिक, आर्थिक सांस्कृतिक साहित्यक आदि सभी क्षेत्रों में नवीन मूल्यों का आगमन हुआ। जिससे 'मध्ययुग' के बर्बर अंधकार में प्रकाश का आगमन हुआ। यही से नवजागरण के वातावरण का निर्माण हुआ। अंग्रेजी शासन उनके सुधारकार्य, नवीन शिक्षा व्यवस्था, उनकी सभ्यता तथा विचारधारा ने हमारे समाज को कई तरह से प्रभावित किया। समाज की सड़ी गली प्राचीन परम्पराओं और रूढ़ियों के खिलाफ आवाज़े उठने लगी।

अंग्रेजों ने अपनी सुविधा के लिए जिन चीजों का आविष्कार किया वहीं चीजें भारत में नवीन चेतना जगाने के लिए आधारभूत बनी। लोगों में नवीन मूल्यों का पदार्पण हुआ।

बलीसिंह का मानना है कि--" भारतीय नवजागरण की शुरुआत धार्मिक जागरण के रूप में होती है। अंग्रेजी राज के अन्तर्गत जनता के सामंत विरोधी संघर्षों ने, गुलामी और उत्पीड़न से मुक्ति तथा श्रेष्ठतर जीवन की आकाक्षांओं ने और जनतांत्रिक मानव मूल्यों ने अपने को धार्मिक आवरण में व्यक्त किया। 19वीं सदी में राजाराम राममोहन राय जैसे समाज सुधारकों ने जिस नवजागरण का सूत्रपात किया उसका उद्देश्य धर्म से पूर्णत: संबंध विच्छेद कर लेना न था, बल्कि वे पुरानी आस्था वेदांती आदर्शवाद को ही शुद्ध और सशक्त बनाकर उसे नये युग के अनुरूप ढालना चाहते थे। धार्मिक अंधविश्वासों प्राचीन रीतिरीवाजों और रूढ़ियों की जकड़ने से भारतीय जनता की चेतना को मुक्त करने में वेदांती एकत्ववाद राममोहनराय जैसे समाज सुधारको के लिए एक अस्त्र बन गया उनके लिये यह एकत्ववाद भारतीय जनता की एकता का प्रतीक था। बहुदेववादी कर्मकाण्डों से और मूर्तिपूजा की जगह एकतत्ववाद एक ही शुद्ध निराकार ब्रह्म की उपासना पर बल देता था। व्यवहार में इसका अर्थ प्रत्येक मनुष्य में ईश्वर का साक्षात्कार था। यह दृष्टिकोण बराबरी और भाईचारे के नये आदर्शो के लिए एक आदर्श दार्शनिक आधार बिन्दु बना।'' 14

भारतीय पुनर्जागरण के केन्द्र में व्यक्ति विशेष न होकर समाज धर्म संस्कृति और देश था। इसी बारे में महावीर सिंह चौहान का मानना है कि--" इस काल में अधिकतर समाज चिन्तकों ने भारतीय समाज के मूल तत्व को पहचाना और अपने मॉडल की नीव धर्म पर खड़ी की क्योंकि

भारतीय समाज रूपी इन्जन को साफ करने के लिए धर्म रूपी कपड़े का प्रयोग होता रहा है पर साफ करते-करते यह कपड़ा स्वयं इतना गंदा हो गया है कि इसे साफ करने की आवश्यकता महसूस की गई।'' 15

धर्म के नाम पर लोगों को लाखों सालों से सलाह देते गये। जब प्रजा मे मध्यकाल के दौरान निराशा नास्तिकता आ गई थी तब उस समय धर्म के सहारे से ही लोगों को जागृत किया गया। जो समाज में दुख दर्द था तथा कुरीतियां थी नवजागरण का उद्देश्य इन सबकों को दूर करना ही था। नवजागरण का मुख्य उद्देश्य एवं कार्य इन कुरीतियों को दूर रखना था तथा स्वयं की सोच के अनुसार समस्या को दूर करना, पुरानी परम्परा को समाप्त करके जो सही है उसका निर्णय करना आदि था। कुछ चीजों में सुधार भी लाया गया। जैसे विधवा विवाह, बालकी को दूध पीती करना, सती प्रथा तथा बालविवाह आदि पर प्रतिबंध लगाया गया। अब मनुष्य वैज्ञानिक तथ्य एवं सोच को स्वीकार करता था। वह बिना तथ्य की बातों को स्वीकार नहीं करता था।

नवजागरण काल के आरंभ से समाज के हर एक क्षेत्र में उसका प्रभाव दिखाई पड़ा, जो एक नई क्रांति लेकर आया। नवजागरण काल में ही समाज के हर क्षेत्र की कई बुराइयों का अंत हुआ। मैने उन क्षेत्रों की संक्षिप्त चर्चा करने का प्रयत्न किया है। जिसमें नवजागरण के कारण परिवर्तन सामने आया है।

नवजागरण से होने वाले परिवर्तन

नवजागरण के कारण जिन क्षेत्रो मे विशेष परिवर्तन आया वे इस प्रकार हैं--

* **आर्थिक क्षेत्र** :--- 1. खेती 2. आधुनिक वाहन व्यवहार तथा 3. आधुनिक उद्योग का विकास।
* **प्रेस और पत्र व्यवहार**:-- 1. प्रेस और पत्रव्यवहार 2. डाकतार और टेलीफोन
* **सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र**

1.ब्रह्म समाज 2. वेद समाज 3. प्रार्थना सामज 4. आर्य समाज 5. रामकृष्ण मिशन 6. थियोसॉफिकल सोसायटी 7. अन्य हिन्दू सुधारक एवं समाजसेवक आंदोलन 8. मुस्लिम धर्म सुधारक आंदोलन 9. पारसी सुधारक आंदोलन।

* **राजनैतिक क्षेत्र** ----
* **शैक्षणिक क्षेत्र**

1. वैदिक कालीनशिक्षा 2. बौद्धिक कालीन शिक्षा 3. मुस्लिम शिक्षा 4. ब्रिटिश शिक्षा

* **साहित्यक क्षेत्र में परिवर्तन**

भारतीय समाज में नवीन चेतना के आगमन से लोगों के दिल में जो धार्मिक मान्यताएं अंधश्रद्धा, रूढ़िगत परंपरा आदि में काफी हद तक सुधार आया। इन्हीं सुधारों के परिणाम स्वरूप भारतीय समाज अपने भविष्य तथा अपने अधिकारों के बारे में सोचने लगा। नवजागरण के कारण होने वाले परिवर्तनों से जो सुधार आये वे इस प्रकार हैं---

*** आर्थिक क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन**

1. खेती
2. आधुनिक वाहन व्यवहार का विकास
3 आधुनिक उद्योग का विकास

कंपनी के शासनकाल में भारत की आर्थिक स्थिति काफी दयनीय थी। बंगाल में अंग्रेजों के प्रभुत्व ने उन्हें देश के प्रमुख व्यापार पर एकाधिकार प्रदान कर दिया। नमक, सुपारी और तंबाकू का व्यापार भारतीयों के हाथ में रह गया था, उसे भी कंपनी के कर्मचारियों , जिनमें गवर्नर क्लाइव, भी शामिल था उसने छीन लिया। कंपनी ने 1857 के युद्ध तथा अन्य युद्ध का कर भारत पर डाल दिया जिससे भारतीय जनता काफी परेशन हो गई। इसके परिणाम स्वरूप लोगों को अपने व्यवयाय बंद करने पड़े और कुछ को अपने घर तक बेचने पड़े जिससे भारतीय जनता काफी गरीब हो गई। " सन् 1864 ई. में तत्कालीन वाइसराय लार्ड लारेंस ने कहा था कि भारत बड़ा गरीब देश हैं देश की बहुसंख्यक जनता कठिनाई से ही अपना पेट भर पाती है। दादाभाई नवरोजी ने लिखा है मैने हिसाब लगाकर देखा है कि प्रत्येक भारतीय की औसतन आय केवल बीस रूपया है इसमें उच्च वर्ग का भाग अधिक है।-- 40 से 18 प्रतिशत आय भारतीय आजीवन अर्धभूखे है।'' 16

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस भारत को पहले सोने की चिड़िया कहा जाता था , जहॉ दूध-घी की नदियां बहती थीं उस भारत में लोगों को भूखों मरने की नौबत आ गई । इतिहास ग्रंथों में जो वर्णाश्रम के नियम आदि बनाये गये थे उसे भी अंग्रेजों ने बदल डाले, अब केवल तीन वर्ग के लोग रहते थे,,, जो इस प्रकार है--

1. शासक वर्ग - पीड़क वर्ग
2. धनिक वर्ग - शोषक वर्ग
3. जनसाधारण वर्ग - जो कठिनाइयों से अपनी उदरपूति करता था।

इसमें खास करके तीसरे वर्ग के लोगों की संख्या काफी थी। यह वर्ग सभी प्रकार के कर अदा करता था। धनी वर्ग शासक वर्ग का अनुयायी था। शासक वर्ग जो भी कहता था उस हुक्म का पालन

वे लोग साधारण जनता से करवाते थे। वे लोग इतना शोषण करते थे कि आम वर्ग उससे पीड़ित होकर गलत कदम उठाने के लिए मजबूर हो जाता था।

" पश्चिम में विज्ञान की प्रगति ने मशीन युग को जन्म दिया था। भारत में यह युग बहुत धीरे-धीरे आया। सन् 1818 में कलकत्ता में पहली बार सूती मिल स्थापित हुई। सन् 1880 में सारे देश में उनकी संख्या 56 हो गई थी। सन् 1895 ई. में 144 सूती मिलें और 29 जूट मिलें खुल गई थी। कोयले की खानें भी काम करने लगी थी। इस प्रगति से ब्रिटिश व्यवसायी चौंकने लगे। वे नहीं चाहते थे कि भारत किसी भी क्षेत्र में स्वाधीन बने। मैंनचेस्टर के व्यापरियों ने भारत के मंत्री से आग्रह किया कि वे भारत में आयातकर रद कर दें। उस समय नार्थब्रुक वाइसराय था। उसने भारतमंत्री के परामर्श को स्वीकार नहीं किया। नार्थब्रुक के पश्चात लार्डलिटन ने पदग्रहण करते ही सूती वस्त्र पर आयात कर रद कर दिया। सन् 1882 ई. में नमक और शराब को छोड़कर सभी वस्तुओं पर से आयात कर उठा लिया गया। जब से इससे 'बजट' में घाटा आने लगा तो एक नया उपाय सोचा गया। आयातकर पुन: लगा दिया गया पर भारतीय मिलों में तैयार होने वाले वस्त्रों पर 3. 5 प्रतिशत कर लगा दिया गया। इसने ब्रिटिश सरकार की ऑखे खोल दी। उसे आगे चलकर आयातकर में वृद्धि कर भारतीय उद्योग व्यापार की कुछ सीमा तक रक्षा करनी पड़ी।'' 17

इसी प्रकार धीरे-धीरे रेल्वे, खेती, टेलीग्राम, पत्रव्यवहार और आधुनिक संसाधनों का विकास हुआ, जिसकी संक्षिप्त चर्चा हम करने का प्रयत्न करेगें।

*** खेती**

भारत एक खेती प्रधान देश है। भारत में पहले से ही खेती से आजीविका चलाने वालों की संख्या काफी रही है। आज भी भारत की लगभग 80 प्रतिशत जनता अपना जीवन निर्वाह खेती से करती है। अंग्रेज जब भारत में आये तब भारत धन-धान्य से पूर्ण था। अंग्रेजों को यहाँ से उनके उद्योगों के लिए कच्चा माल पूरी मात्रा में मिल जाता था। जैसे कपास, तिलहन, पटसन, गेहूँ, आदि। इसलिए उन लोगों ने यही पर रहकर व्यापार करना प्रारम्भ किया और धीरे-धीरे अपना आधिपत्य जमाने लगे और यहीं पर जम गये। जिसके परिणाम स्वरूप किसानों की खेती को भी हाथ में ले लिया और खेती पर कर लेना शुरू किया। गृह उद्योगों को बंद करवा दिया। भारत का कच्चा माल इंग्लैण्ड भेजकर उसी को भारत में महगें दामों पर बेचना शुरू किया। भारत की वस्तुओं पर ज्यादा कर लगा दिया जिससे भारत और गरीब बनता चला गया। कुटीर उद्योगों आदि के बंद हो जाने के कारण भारत की काफी जनता को खेती पर निर्भर होना पड़ा। खेती के अलावा जो लोग हथकरघा, बुनाई

एवं कताई उद्योग, सिल्क एवं ऊनी वस्त्रों, कच्चे बर्तन, कागज, धातु, चमड़ा रंगाई उद्योग आदि करते थे उससे अंग्रेज काफी प्रभावित हुए और अपनी एक तरफी नीति के तहत धीरे-धीरे सब कुछ ठप कर दिया।

" जमीन पर अधिकार उसे जोतने वाले किसान का होना चाहिए, उसका मालिक न तो जमीदार है न अंग्रेज सरकार, जिस समय किसान अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करेगें, उस समय वे कितना ही कानून का ध्यान रखें अनेक प्रकार की कठिनाइयॉं सामने आयेगी ही। द्विवेदी जी इन कठिनाइयों के बारे में कहते है; विघ्न बाधाएं फिर भी उपस्थित होगीं; परन्तु 3/4 जनसमुदाय की आवाज के सामने 1/4 जनसमुदाय के द्वारा उपस्थित किये गये विघ्न कितनी देर तक ठहर सकेंगे ? एक बात और भी तो है। अवशिष्ट 1/4 समुदाय में भी तो बहुत से लोग किसानों के पृष्ठ पोषक हैं।" 18

लेकिन अंग्रेजों की औद्योगिक नीति के कारण भारत में कृषि में कई परिवर्तन एवं तेजी आई। जैसे--" अपनी खपत के स्थान पर बिक्री के लिए फसलों का उत्पादन करने के कई कारणों के फलस्वरूप व्यवसायी कृषि विकसित हुई। इसका एक प्राथमिक कारण राज्यों द्वारा कृषकों पर लगाये गए करों को भरने के लिए कृषकों द्वारा रास्ता खोजना था। कृषकों ने केवल एक विशेष फसल उगानी शुरू की। कई गॉवों की सामूहिक भूमि एक साथ उपयोग की जाती थी क्योंकि यह भूमि एक कृषीय फसल जैसे कि कपास, पटसन, गेहूँ, गन्ना और तिलहन इत्यादि की खेती के लिए विशेष उपयुक्त होती थी। नकदी फसलों की खेती में तीव्र वृद्धि का कारण ब्रिटिश सरकार द्वारा इसे प्रोत्साहित करना था। इग्लैन्ड में आधुनिक उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चे माल के अधिक उत्पादन हेतु उसके अनुरूप आर्थिक नीतियॉं अपनाई। सरकार द्वारा परिवहन की सुविधा में किये गये सुधारों कृषि उत्पादित वस्तुओं का व्यापार हो गया। अत: सरकार ने भारतीय कृषि के विशिष्टीकरण एवं व्यवसायीकरण को बढ़ावा दिया।" 19

1857 से पहले ब्रिटिश सरकार की कंपनी मात्र इतना ही जानती थी कि किस तरह से लगान वसूल किया जाय, भारत का व्यापार किस तरह से ठप किया जाय तथा किस तरह से भारत में से जयादा धन कमाया जाय। कंपनी मात्र किसानों का शोषण ही करती थी और इन कंपनी सरकार का साथ दे रहे थे, सामंत लोग पूंजीपति लोग।

" वास्तव में इस काल में कृषि की पैदावार और भूमि की उत्पादकता में वृद्धि के लिए ऐसा कोई भी प्रयत्न नहीं किया गया जो उल्लेखनीय हो। 1860 के दशक में कृषि विभाग स्थापित करने की

कुछ बात चली थी पर सरकार ने इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाया। 1870 में इसकी दुबारा चर्चा चली और पंजाब बंगाल आदि कुछ भागों के प्रांतो में कृषि-विभाग खोले गये । इन विभागों में कुछ महत्वपूर्ण केन्द्रों पर बेहतर तकनीक विकसित करने तथा अधिक पैदावार वाले बीजों के परीक्षण तथा उनके प्रयोग को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार द्वारा संचालित प्रदर्शन फार्म स्थापित किये। यहॉ यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि इन विभागों ने उन्हीं फसलों तथा किस्मों को बढ़ावा देने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया जिनकी विदेशी बाजारों में जरूरत थी। पंजाब में अमरीकी कपास की खेती को बढ़ावा दिया जाना इसका ज्वलंत उदाहरण है।'' 20

इस प्रकार धीरे-धीरे खेती में सुधार होने लगा। बिटिश सरकार ने इंग्लैंड में उपयोग किये जाने वाले साधनों का उपयोग भारत में शुरू किया।" 1849 में पंजाब को खालसा करने के बाद वहॉ के किसानों की हालत दयनीय हो गई थी। इसलिए लार्ड कर्जन 1901 के कानून के अनुसार वंशपम्परागत जमीन बेचने तथा सरकार की इजाजत के बगैर उसे खरीदने के लिए मनाई हुक्म फरमाया तथा पंजाब के किसानों की कुछ मुश्किलियों को दूर किया।'' 21

अंग्रेजों की कुछ नीतियों से भारत के किसानों को काफी फायदा मिला। नये-नये फार्म के स्थापित होने से उन्हें इस बात का पता चला कि वे अपनी फसल में किस प्रकार बढ़ोत्तरी कर सकते हैं। ट्रैक्टर, कटाई तथा बुवाई के साधन आदि ने भारत के किसानों को और समृद्ध बनाया।

" 1850 से पहले तक सिंचाई व्यवस्था का कार्य सैनिक बोर्ड की देख-रेख में होता था। 1850 के आसपास भारत सरकार और प्रांतों के स्तर पर लोक निर्माण विभागों की स्थापना हुई। शुरू-शुरू में इन विभागों का काम पुरानी नहरों के रख-रखाव या उनकी मरम्मत और गाद निकालने तक ही सीमित था। यहॉ इस बात का उल्लेख करना भी आवश्यक है कि 1850 तक भारत में सिंचाई वाली नहरों और कुंओं की संख्या सामान्य थी जो परंपरागत तकनीक पर आधारित थे। --- उन्नीसवीं शताब्दी के सत्तरवें दशक में सरकार ने तय किया कि सिंचाई के कार्यो के लिए जनता से ऋण मांगा जाये। --- बीसवीं शताब्दी के पांचवे दशक तक मुख्य नहरों और उपनहरों की कुल लंबाई 71656 मील थी, जिसमें लगभग 3 करोड़ 28 लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो रही थी। सिंचाई कार्यो पर कुल निवेश की राशि एक अरब चौवन करोड़ चालीस लाख थी जिससे 1845-46 तक प्रतिवर्ष औसत शुद्ध आय तेरह करोड़ तिरासी लाख रूपये हुई।'' 22

सिंचाई की व्यवस्था के फलस्वरूप खेती में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई जिसमें लार्ड कर्जन के कार्य सराहनीय है जो इस प्रकार है---

1. "1901 के केल्विन कमीशन के सूचनाओं के हिसाब से कर्जने पंजाब की पुरानी नहरों को ज्यादा कार्यक्षम बनाया तथा चिनाब, झेलम आदि नदियों में से नहरे खुदवाई गई। जिससे पंजाब की खेती में काफी बढ़ोत्तरी हुई।

2. पूना, नागपुर, सैयदपुर और कानपुर की खेती से जुड़ी संस्थाओं को उसने वैज्ञानिक रूप से काम करती बनाई तथा खेती में संसोधन करने के लिए उसने बंगाल में 'पुस' नामक जगह पर एक केन्द्र स्थापित किया।

3. खेती में संशोधन करने तथा उससे जुड़ी हुई संस्थाओं को स्थापित करने के लिए कर्जन ने प्रांतों की वार्षिक 130,000 पाउन्ड का अनुदान किया।

4. खेती को विशेष उत्तेजना मिले इसलिए कर्जन ने 1904 में सहकारी संस्थानों को सूचित करने के लिए एक कानून निकाला। इस कानून के तहत किसानों को सामान्य ब्याज के दर से लोन देने के लिए गॉव तथा शहरों में 'किसान बैंक' तथा 'किसान सहकारी संघों' की स्थापना की गई। थोड़े ही समय में कर्जन की इन नीतियों का शुभ परिणाम सामने दिखाई देने लगा।'' 23

इस तरह धीरे-धीरे खेती में सुधार आया और भारतीय किसान शोषण पूंजीवाद तथा लगान से मुक्ति पाकर एक अच्छी जिन्दगी जीने लगा। अब वह पहले की तरह न तो कर्ज में डूबा हुआ था और न ही उसे भूखे रहने की नौबत आती थी। आज तो आधुनिक युग में खेती की स्थिति में काफी सुधार आया हुआ है। 1857 के बाद भारतीय किसानों में एक आश्चर्य जनक परिवर्तन आया है जो हम इसके पहले चर्चा भी कर चुके हैं। आज किसानों की अच्छी मेहनत के कारण उनका भविष्य उज्जवल दिखाई देता है।

*** आधुनिक वाहन व्यवहार का विकास**

" भारत में आधुनिक वाहनव्यवहार तथा संदेशव्यवहार के साधनों में जो तेजी से विकास हो रहा था उसने राजकीय एक्य तथा राष्ट्रीय उत्थान की प्रक्रिया को तेज बनाया। रेल्वे, तार, पोस्ट, जमीन, तथा जलव्यवहार के मार्ग, लश्कर, आर्थिक तथा राजकीय कारणों से बढ़ाये गये लेकिन इससे लोगों को भी फायदा हुआ। आना-जाना तथा लेन-देन सरल हुआ। कारीगर तथा व्यापारी वर्ग देश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में व्यापर हेतु बसने लगे जिससे बस्तियों में लोगों में फेरबदल होती गई। जिससे दो प्रदेशों के बीच समझदारी बढ़ने लगी। रेल्वे की स्थापना से उद्योगों का विकास तेजी से होने लगा और नये-नये उद्योग भी जल्दी शुरू होने लगे। भारत की रेल्वे उसके आधुनिक उद्योगों की स्थापना का पुरागामी बनेगा।'' ऐसा मार्क्स का कथन सच हुआ।'' 24

भारत में रेल्वे की शुरूआत 13 अप्रैल सन् 1853 में वाइसराय लार्ड डलहौजी ने की थी। यह सबसे पहली ट्रेन मुंबई से थाना के बीच में शुरू हुई। इसको प्रारम्भ करने का मकसद सिर्फ अपने व्यापार को बढ़ाना था। इससे अंग्रेज अपने माल को आसानी से एक जगह से दूसरी जगह भेज सकते और कम समय में ज्यादा दूरी तय की जा सकती थी। भारतीय तथा आम इन्सान इसमें बैठ नहीं सकते थे। रेलवे के विकास में ज्यादा तेजी सन् 1857 के विद्रोह के बाद आई। जब ब्रिटिश सरकार को तीव्र यातायात एवं संचार के साधनों की आवश्यकता महसूस हुई। लेकिन इसमें बड़े स्तर पर पूंजी निवेश नहीं हो रहा था। अत: कंपनी ने इसमें अंग्रेज कंपनियों की पूंजी निवेश करने का फैसला किया। जिनकी पूंजी पर सरकार द्वारा ब्याज की गारंटी दी गई। 1859 के अंत तक 5000 मील रेल लाइन बिछाने के लिए इस प्रकार आठ कंपनियों द्वारा अनुबंधित हस्ताक्षर किये गये, और धीरे-धीरे रेल्वे में बढ़ोत्तरी हुई।

" सन् 1879 के अंत तक कई कंपनियों द्वारा 6128 मील रेल लाइन बिछाई जा चुकी थी जबकि राज्य द्वारा 2175 मील लाइन बिछाई गई थी। मार्च 1923 तक भारत में रेल लाइनों की लम्बाई 37618 मील थी। जिसके 66 प्रतिशत से अधिक पर सरकार सरकारी एजेंसियों तथा भारतीय राज्यों का स्वामित्व था। सन् 1900 में पहली बार रेल्वे से कुछ मुनाफा हुआ। बाद के वर्षों में यह काफी तेजी से बढ़ा। सन् 1918-1919 में रेल्वे की कुल आमदनी 10 मिलियन पौण्ड हुई। 1924-25 में पहली बार रेल्वे वित्त को सामान्य बजट से अलग कर दिया। इस प्रकार 1944 तक व्यापरिक तौर पर सभी रेल लाइनो का राष्ट्रीयकरण हो चुका था। सन् 1946 में रेल्वे लाइनों की स्थिति इस प्रकार थी, बड़ी लाइन 20686.60 मील मीटर लाइन 16004.23 तथा छोटी लाइन 3827.08 मील।" 25

इस प्रकार धीरे-धीरे रेलवे लाइनों में बढ़ोत्तरी हुई जो भारतीय विकास के लिए काफी महत्वपूर्ण रहा। आजादी के दौरान इस सुधार ने काफी महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

" रेल्वे तथा तेज वाहन व्यवहार के विकास से लोगों में राजकीय जागृति फैलाने का कार्य नेताओं के लिए सरल बना। बंगाल के नेताओं के लिए बम्बई प्रदेश का तथा पंजाब के नेता के लिए दक्षिण प्रदेश का प्रवास सामान्य बन गया। इस तरह शुरूआत में सुरेन्द्रनाथ बेनरजी, फिरोजशाह मेहता, दादाभाई नवरोजी, गोपालकृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक आदि जबाबदार राज्यतंत्र और गृहस्वराज का संदेश लोगों तक पहुँचा सके। प्रादेशिक कक्षा के स्थान पर राष्ट्रीय कक्षा की नेतागीरी बन गई। जिसने स्वराज्य की सिद्धि में महत्वपूर्ण योगदान दिया। तथा रेल्वे में उच्च एवं निम्न जाति के लोगों के साथ प्रवास करने का मौका मिला। जिससे सामाजिक भेदभाव कम हो गये। बुद्धिशाली सम्पन्न वर्ग

का जन्म होने लगा। यह बुद्धिशाली वर्ग नई दृष्टि के साथ स्वदेश में वापस आने लगे। उन्होंने भी सामाजिक वहम् और धार्मिक अंधश्रद्धा घटाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।'' 26

इस तरह नवजागरण के बाद रेल तथा तेज वाहन व्यवहार का विकास होने से लोगों में जागृति आई जो लोगों के जीवन में प्रगति के लिए एक जरिया बना।

" सामाजिक और संस्कृतिक दृष्टि से रेलों का विशेष महत्व रहा है। रेलवे के कारण भारत के विभिन्न प्रान्तों के निवासी परस्पर एक दूसरे के सन्निकट आये एवं उन्हें राजनैतिक व सांस्कृतिक एकता की अनुभूति होने लगी। सामाजिक परिवर्तनों का मार्ग सुलभ हो गया, जाति बन्धन ढीले पड़ गये, अछूत समस्या प्रभावित हुई, विविध ललित कलाओं की धाराओं के प्रवाह में तीव्र गतिशीलता आ गई व देश के संस्कृतिक और ऐतिहासिक स्थानों के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हुई।'' 27

*** आधुनिक उद्योगों का विकास**

" इस बात को सभी मानते हैं कि अंग्रेजों के आने के समय भारत की नियति का अधिकांश भाग निर्मित वस्तुओं का था जिनमें सस्ते से लेकर मंहगे अनेकों किस्म के सूती और रेशमी कपड़े प्रमुख स्थान प्राप्त किये हुए थे। इनके उत्पादन केंद्र पूरे भारत में फैले थे परंतु बंगाल, गुजरात तथा पूर्वी समुद्री तट पर कोरोमंडल क्षेत्र दूर-दूर तक ख्याति प्राप्त कर चुके थे। अठारहवीं शताब्दी के अंत तक भारतीय वस्त्रों की मांग देश-विदेश में थी। भारत में आंतरिक मॉग की संपूर्ण पूर्ति भारतीय उत्पादक से होती थी। इससे जाहिर है कि इतने विशाल पैमाने पर कपड़ों का उत्पादन पूर्ण विकसित कुटीर और हथकरघा उद्योग द्वारा ही संभव था।'' 28

इतना ही नहीं-" वस्त्र निर्माण भारत का प्रमुख उद्योग था और यहॉ के सूती कपड़े की सारी दुनिया में प्रशंसा और मांग थी। तेरहवीं चौदहवीं शताब्दियों में धातुकर्म प्रस्तर शिल्प, शक्कर, नील और कागज के उद्योग भी पल्लवित हुए। देश के कई हिस्सों में रंगाई प्रमुख उद्योग था कुछ भागों में सोने के तारों और कसीदाकारी का काम विकास के चरम बिंदु पर था। खानों से रांगा, पारा और कुछ हद तक लोहा निकालने, शीशे की चीजों का निर्माण आदि अन्य विकसित उद्योग थे। गजदंत से भुजदंड, अंगूठी, पासे, मनका, पलंग और अन्य चीजें बनती थी और सारी दुनिया में खासकर यूरोप में इनकी बड़ी मांग थी। बेश कीमती पत्थरों पर किए गए काम में भी कुशलता का परिचय मिलता था।'' 29

इससे हमें पता चलता है कि प्राचीन समय में भारत कितना समृद्ध देश था। भारत का उद्योग पूरी दुनिया में विख्यात था। इसलिए तो भारत को उस समय 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था।

लेकिन हर कीमती चीज पाने की तमन्ना सबको होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत देश उस समय प्रगति के पथ पर था,समृद्धि से चमक रहा था और भारत की इसी प्रगति और समृद्धि रूपी दमक ने दुनिया के विभिन्न देशों को चकाचौंध कर दिया था। विभिन्न देशों की प्रजा भारत में आई और व्यापार करने लगी इसमें अंग्रेज भी शामिल हो गये और बाद में भारत पर अपनी हुकूमत स्थापित करनी चाही और वे उसमें कामयाब भी हुए। बस तभी से भारत की दुर्दशा शुरू हो गई। अंग्रेजों ने अपने क्रूर शासन तथा नीतियों से भारत के उद्योगों को ठप कर दिया।

" अंग्रेज सरकार ने भारत के सूती और रेशमी कपड़ों की मॉग घट जाए और इंग्लैंड के ऊनी तथा रेशमी कपड़े ज्यादा चले इसलिए सरकार ने 1702 में सादे सूती कपड़ों पर 15 प्रतिशत आयात कर लगा दिया।'' 30

" 19 वीं शताब्दी के मध्य तक हम पाते हैं कि न केवल भारतीय कपड़ों का निर्यात लगभग समाप्त हो गया और भारत से कच्चा माल या अर्धनिर्मित वस्तुओं का भी निर्यात लगभग समाप्त हो गया और भारत से कच्चा माल या अर्धनिर्मित वस्तुओं का ही निर्यात होने लगा बल्कि भारत की आंतरिक मांग की पूति भी इंग्लैंड में निर्मित कपड़ों से की जाने लगी। औद्योगिक ह्रास का यह स्पष्ट रूप था।'' 31

इस तरह अंग्रेजों की कूटनीति और देश को आंतरिक युद्धों की वजह से भारतीय व्यापार ठप हो गया। अब भारत में गृहउद्योग, कुटीर उद्योग सब नष्ट हो गये। अब जिस चीज वस्तुओं एवं उद्योगों के लिए भारत पूरी दुनिया में राज करता था वही चीजवस्तुओं एवं उद्योग भारत में बंद हो गये। काफी सालों के बाद भारत में फिर से वही उद्योगों का संस्थापन हुआ। यह उद्योग मनुष्य के श्रम से ज्यादा मशीन पर आधारित उद्योग भी कहा जा सकता है।

" भारत में मशीन युग की शुरूआत 1850 ई में सूती वस्त्र उद्योग जूट, उद्योग एवं कोयला उत्खनन उद्योग के साथ शुरू हुआ। अन्य यांत्रिकीय, उद्योगों का विकास जैसे कि चावल आटा एवं लकडी मिलें, चमड़ा ऊनी वस्त्र, कागज, चीनी लोहा एवं स्टील उद्योग इत्यादि उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य एवं बीसवीं शताब्दी के बीच शुरू हुआ। इन उद्योगों की स्थापना से भारत में आधुनिक उद्योगों का विकास हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी में पौधरोपड़ उद्योग का विकास जैसे कि अफीम, चाय और काफी ब्रिटिश भारतीय आर्थिक इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी।'' 32

इस प्रकार धीरे-धीरे भारत में उद्योगों का विकास होने लगा। भारतीय उद्योगों में रेल, तार पोस्ट, तेज वाहनव्यवहार का योगदान महत्वपूर्ण है। इन्हीं कारणों की वजह से भारत में उद्योगों का विकास तेजी से होने लगा।

*** प्रेस और पत्रव्यवहार**

इसके अन्तर्गत 1. प्रेस और पत्रव्यवहार तथा 2. डाक, तार और टेलीफोन का समावेश किया जा सकता है।

1. प्रेस और पत्रव्यवहार

समाचार पत्र रहित जीवन की आज हम कल्पना भी नहीं कर सकते। समाचार पत्र हमारे दिन-प्रतिदिन के जीवन का एक अनिवार्य अंग बन गए हैं। आधुनिक जीवन में प्रेस की अहम् भूमिका है। प्रेस केवल जनता के विभिन्न विषयों राजनीति से लेकर मनोरंजन तक के साधनों को उपलब्ध कराने का एक जरिया ही नहीं है पर साथ ही यह जनता की भावनाओं को स्वरूप देने, उसे प्रभावित करने और उसके विचारों को प्रतिबिम्बित करने का कार्य भी करता है। वह सरकार के ऊपर अंकुश भी करता है। अपने लेखों विचारों एवं संपादकीय तथा पाठकों द्वारा लिखे गये संपादक के नाम पत्रों के माध्यम से सरकार को जनता की भावनाओं एवं विचारों से अवगत कराता है। प्रेस समाज को रूप बल एवं बुद्धि प्रदान करता हे। जनता के हाथों में प्रेस एक महत्वपूर्ण तथा दुर्जेय शस्त्र है और जनता के विचारों को तेजी से फैलाने वाला एक माध्यम भी। समाचार पत्रों का उदय एवं विकास 19वीं शताब्दी में हुआ।

" आधुनिक भारतीय प्रेस का प्रारम्भ 1766 में विलियम बोल्टस (Bolts) द्वारा एक समाचार पत्र के प्रकाशन से हुआ। परंतु ईस्ट इण्डिया कंपनी ने उनको इंग्लैंड भेज दिया। 1780 में जे. के. हिल्की ने बंगाल गजट नामक समाचार पत्र प्रकाशित करना आरंभ किया था। हिल्की को कंपनी की आलोचना करने के अपराध में सजा भी भुगतनी पड़ी थीं परंतु उसके पत्र ने अपनी नीति नहीं बदली। परंतु हिल्की के स्वभाव तथा दृष्टिकोण के पत्रकारों की संख्या घटने की अपेक्षा दिनो दिन बढ़ने लगी। नवम्बर 1780 में प्रकाशित इंडिया गजट दूसरा भारतीय पत्र था। इसके साथ ही जहाँ एक ओर भारतीय प्रेस के क्षेत्र में तीव्र गति से विकास हुआ वहीं दूसरी ओर पत्रकार कंपनी के उत्तराधिकारियों के लिए समस्या बनी रही।

18वीं शताब्दी के अंत तक बंगाल में कलकत्ता कैरियर, एशियाटिक मिरर तथा ओरियंटल स्टार, बंबई गजट तथा हेराल्ड और मद्रास में मद्रास कैरियर, मद्रास गजट आदि समाचार पत्र प्राकशित होने

लगे थे। इन समाचार पत्रों की एक विशेषता यह थी कि ये एक दूसरे के पूरक थे। दूसरी अभी इनमें आपसी प्रतिस्पर्धा प्रारंभ नहीं हुई थी। तीसरी विभिन्न समाचार पत्र भिन्न-भिन्न दिन प्रकाशित होते थे। चौथी उस काल के समाचार पत्रों का क्षेत्र भी सीमित होता था। इनका क्षेत्र केवल कंपनी के अधिकारियों व्यापरियों तथा मिशनरियों तक ही सीमित था।'' 33

राष्ट्रीय चेतना को फैलाने के लिए वर्तमान पत्रों का महत्वपूर्ण योगदान है। विभिन्न राष्ट्रों में विभिन्न लोकभाषाओं में वर्तमान पत्रों की शुरूआत हो गई है। भारत देश को एक जुट करने में इन वर्तमान पत्रों का सहारा लिया गया। भारतवासियों में राष्ट्रीय चेतना आजादी का जोश लाने में महत्वपूर्ण योगदान पत्रों का है। पूरे देश में एक साथ एक ही कोई बात को फैलाने के लिए वहाँ के वर्तमान पत्रों का योगदान जरूरी है। हमारे देश को आजादी दिलाने में वर्तमान पत्रों का काफी योगदान रहा हैं आज भी वर्तमान पत्रों का योगदान पहले की अपेक्षा ज्यादा हो गया है।

"1888 तक बंगाल में लगभग 62 बंबई लगभग 100 तथा मद्रास प्रांत में 50 जितने वर्तमान पत्र जनभाषा में प्रकाशित हुए। इसके अलावा अंग्रेजी भाषा में भी काफी सारे अखबार प्रकाशित हुए है।'' 34

इन सभी अखबारों में मुख्यतया जिन अखबारों ने अपनी प्रसिद्धि फैलायी उनके नाम इस प्रकार हैं ---

अखबार का नाम	स्थल	प्रकाशक का नाम	प्रकाशन वर्ष
1.हिन्दू पेट्रीअर	कलकत्ता	हरिश्चन्द्र -मुखरजी	ई.स. 1853
2.बंगाड़ी	कलकत्ता	सुरेन्द्रनाथ बेनरजी	---
3.अमृत बझार पत्रिका	---	शिशिर कुमार घोषना	ई.स. 1868
4.ट्रीब्युने	लाहौर	---	ई.स. 1881
5.इन्डियन रीव्यु	मद्रास	---	---
6.हिन्दू	मद्रास	---	ई.स. 1878
7.केसरी (मराठी दैनिक)	बम्बई	---	ई.स. 1881
8.मराठा	बम्बई	(अंग्रेजी साप्ताहिक) -	ई.स. 1881

1889 से केसरी और मराठा पत्रिका लोकमान्य तिलक के हस्तक आई थी।'' 35

इन सभी मे ज्यादातर पत्र वहीवटी खर्च कम करने, वहीवट सुधारण हिन्दुस्तानियों को अच्छी पोस्ट पर नियुक्त करने के लिए, बंधारणीय सरकार की रचना के लिए, न्याय प्रथा सुधारने के लिए

भारत में ओद्योगिक विकास करने, शिक्षण का प्रचार प्रसार के लिए तथा रंगभेद नाबूद करने के लिए सरकार समक्ष भारतीय अपील करते थे।'' 36

भारतीयों को भी इन अखबारों के द्वारा जगाया गया। उनमे एक नई जोश उमंग, कुछ कर छूटने की तमन्ना को जगाने में इन वर्तमान पत्रों का काफी योगदान है। इसी तरह वर्तमान पत्रों का धीरे-धीरे विकास होने लगा और आज हम उन्हीं वर्तमान पत्रों के माध्यम से पूरे देश में होनेवाली सारी घटनाओं को जान सकते है। आज लोग सुबह उठकर भगवान का नाम ले या न ले, लेकिन अखबार जरूर पढ़ते हैं। अखबार चाहे किसी भी भाषा का हो लेकिन अब वो हर इन्सान की जरूरत हो गया है।

2. डाक तार और टेलीफोन

" यातायात में डाक तार और टेलीफोन का भी अपना महत्व है। यों तो मध्यकालीन युग में डाक व्यवस्था विद्यमान थी पर अंग्रेजों ने उसे अधिक सुव्यवस्थित कर दिया। अंग्रेजी शासन के प्रारम्भिक काल में डाक एक स्थान से दूसरे स्थान को पैदल हरकारों द्वारा भेजने की व्यवस्था थी। यत्र-तत्र घोड़ागाड़ियों का भी उपयोग होता था। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में डाकखानों की संख्या बहुत कम थी। सन् 1836 में भारतवर्ष में कुल 276 डाकखाने थे। लार्ड डलहौजी ने डाक व तार के विभाग को सुसंगठित किया। प्रत्येक साधारण पत्र के लिए डाक की दर आध आना कर दी गई एवं बाद में टिकट व्यवस्था भी प्रारम्भ कर दी गई। ज्यों-ज्यों यातायात के साधनों में सुधार होता गया, डाक व्यस्था भी अच्छी होती गई। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में डाकखाने की संख्या में वृद्धि हुई एवं देश के अनेक भागों में डाकखानों की सुविधायें सुलभ हो गई। सन् 1948-49 में भारत में कुल 26760 डाकखाने थे। सन् 1949 में डाक-विभाग ने हवाई जहाज से डाक लाने ले जाने और बेतार के तार से सन्देश भेजने की व्यवस्था भी कर दी है।

भारतवर्ष में डलहौजी ने सन् 1854 में तार व्यवस्था प्रारम्भ की और सर्वप्रथम कलकत्ते से आगरा तक टेलीग्राफ लाइन की लम्बाई में खूब वृद्धि हो गई। सन् 1912 तक तार के लिए अलग विभाग था जो डायरेक्टर जनरल ऑफ टेलीग्राफ नामक अधिकारी के नियन्त्रण में था और यह विभाग भारत सरकार के व्यापार व उद्योग विभाग के अन्तर्गत था। सन् 1914 में डाक विभाग और तार विभाग सम्मिलित कर दिये गये। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात डाक व तार विभाग का अत्यधिक विस्तार हुआ और ग्रामीण क्षेत्र को भी इससे सुविधा पहुँचाने के प्रयत्न किये गये। प्रथम जून सन् 1949 से देवनागरी लिपि में हिन्दी भाषा में तार भेजने की व्यवस्था की गई।

हमारे देश के आर्थिकजीवन में डाक-तार के बहुत लम्बे समय के पश्चात टेलीफोन ने प्रवेश लिया। परन्तु हमारी टेलीफोन व्यवस्था पाश्चात्य देशों की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित है। अतएव इसका प्रयोग धनिको व्यापरियों उद्योगपतियों व सरकारी विभागो तक ही सीमित रहा। छोट-छोटे नगरो व ग्रामों में आज भी इस सुविधा का अभाव है। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात टेलीफोन का उपयोग अधिक बढ़ गया। भारतीय व्यवस्था का विस्तार हो जाने से टेलीफोन का विस्तार अधिक द्रुतगति से हुआ और टेलीफोन के नवीन मन्डलों का निर्माण कर छोटे-छोटे नगरों को भी सम्बन्धित किया जा रहा है।'' 37

*** सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र**

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध काल में भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की नींव पड़ चुकी थी। पश्चिम की राजनैतिक सत्ता का प्रस्थापना के साथ पाश्चात्य संस्कृति की आंधी भी देश को झकझोरने लगी थी।

" अंग्रेजी राज का जो प्रभाव भारतीय समाज पर हुआ वह उन सभी प्रभावों से भिन्न था जो उस समय तक भारत पर हुए थे। विदेशी आक्रांताओं ने भारतीयों को अनेक बार हराया तथा कई विदेशियों ने भारत पर राज किया था। परन्तु भारत ने कभी भी आत्मविश्वास नहीं खोया था और उसे सदैव यह आन्तरिक विश्वास था कि उसकी सभ्यता तथा संस्कृति इन विदेशी शासकों की संस्कृति से अधिक उत्तम है। प्रायः ऐसा हुआ है कि जो विदेशी भारत में आकर बस गये उन्होंने भारतीय धर्म, संस्कृति तथा सभ्यता को अपना लिया तथा वे भारतीय समाज का अभिन्न अंग बन गये तथा उन्हीं में पूर्ण रूप से समा गए।

परन्तु अंग्रेजी आक्रान्ता तो पूर्णरूप से भिन्न थे। 18वीं शताब्दी में यूरोप मे एक नवीन बौद्धिक लहर चल रही थी, जिसके फलस्वरूप एक'जागृति के युग' का सूत्रपात हुआ। तर्कवाद तथा अन्वेषण की भावना ने यूरोपीय समाज को एक प्रगति प्रदान की। विज्ञान तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने राजनैतिक, सैनिक, आर्थिक तथा धार्मिक सभी पक्षों के प्रभावित किया और अब यूरोप सभ्यता का अग्रणी महाद्वीप था। उसके विपरीत भारत एक निश्चल, निष्प्राण तथा गिरते हुए समाज का चित्र प्रस्तुत करता था। इस प्रकार भारत एक ऐसे आक्रान्त से सामना करता हुआ जो न केवल रंग से श्वेत था बल्कि अपने आप को सामाजिक तथा सांस्कृतिक रूप से अधिक उत्तम समझता था और संभवतः था भी।

कुछ समय तक तो ऐसा लगा कि जैसे भारत पश्चिमी विचारों तथा मूल्यों से पूर्ण रूप से पराजित हो जाएगा। ऐसा लगता था कि भारत संसार में सभ्यता की दौड़ में बहुत पिछड़ गया है।

इसकी प्रतिक्रिया हुई। कुछ अंग्रेजी शिक्षित बंगाली युवकों, जिन्हें डेरोजियों के अनुगामी कहते थे, उनके दिल में हिन्दू धर्म और संस्कृति के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई थी और उन्होंने न केवल हिन्दू धर्म और उनके विचारों और परम्पराओं का त्याग किया अपितु मदिरा पान तथा गोमांस भक्षण अपना कर हिन्दुओं के मनोभावों को अत्यंत क्षोभ पहुँचाया। कुछ अधिक परिपक्व व्यक्ति जिनके नेता श्री राजाराम मोहनराय थे, पाश्चात्य विचारों से प्रभावित हुए परन्तु उन्होंने हिन्दू धर्म तथा समाज से नाता तोड़ने से इन्कार कर दिया। इनका विचार था कि हिन्दू धर्म व समाज में सुधार होना चाहिए और हमें पूर्व तथा पश्चिम के उत्तम विचारों को स्वीकार कर लेना चाहिए। परन्तु तीसरा एक ऐसा भी वर्ग था जो पाश्चात्य संस्कृति की श्रेष्ठता को स्वीकार करने को तत्पर नहीं था। वह भारत को यूरोप की एक निर्जीव अनुकृति बनाने को उद्यत नहीं था। वह भारत की प्राचीन परम्परा में आधुनिक राष्ट्रावाद के प्रकाश में प्रेरणा लेना चाहता था। यह नवीन हिन्दू धर्म (New Hindusim) यह कहता था कि यूरोप को आध्यात्मवाद से बहुत कुछ सीखना है।

यह नवीन पाश्चात्य शिक्षित वर्ग, तर्कवाद, विज्ञानवाद तथा मानवतावाद से बहुत प्रभावित हुआ। भारतीय नेताओं ने इस नवज्ञान से प्रभावित होकर अन्दर से हिन्दू धर्म को सुधारने का प्रयत्न किया और अंधविश्वास मूर्तिपूजा तथा तीर्थयात्रा इत्यादि को तर्क के तराजू में तोल कर धर्म में सुधार किया।

इस प्रकार एक नई धर्म निरपेक्षता की प्रवृत्ति ने जन्म लिया। इसके अनुसार धर्म को तर्क के दण्ड से मापा गया। और निजी धर्म की असंगतियॉ थी उसे छोड़ा जाने लगा और यह प्रयत्न किया गया कि जो परम्परागत असंगतियॉ थी उसे बदला जाय या उसके लिए कोई तर्कसंगत उपाया ढूँढ़ा जाये। इस प्रकार का छुआछूत का विचार जो हिन्दूधर्म का अभिन्न अंग था उसे छोड़ दिया गया। इसी प्रकार कुछ साग सब्जियों जिसे अपवित्र माना जाता था, जैसे प्याज, लहसुन, टमाटर अदरक आदि के बारे में समाज के मन में विचारों में परिवर्तन आया। इसी प्रकार समाज के दैनिक कर्मकाण्डों में भी परिवर्तन आए।

शहरीकरण तथा आधुनिकीकरण ने तथा रेलों के प्रचलन ने लोगों के खाने, पीने, छुआछूत इत्यादि बहुत से विचारों को प्रभावित किया।

इस प्रकार के नवीन विचारों से भारतीयों की सोच में बदलाव दिखाई दिया। लोगों ने उन पुस्तको को भी पढ़ना प्रारम्भ कर दिया जो पुस्तके इसके पहले उनके पूर्वजों ने भी नहीं पढ़ी थी। जिसके परिणाम स्वरूप लोगो में इस भावना का उदय हुआ कि ब्राह्मणों द्वारा बनाये गये कुछ नीति-नियम इतने कठोर हैं कि उसका पालन करना तो दूर की बात है, उसके बारे में सोचना भी

असंभव था। साथ ही नवजागरण का अभियान आदि कुछ सामजिक अभियान के द्वारा भारतीय समाज में काफी बदलाव आया और भारत के आधुनिकीकरण में भी योगदान दिया। साथ ही साथ भारतीय समाज में कुछ धार्मिक व सामाजिक सुधार आंदोलन प्रारंभ हुए जिन्होंने भारतीय समाज का न केवल रूप ही बदल दिया अपितु भारत के आधुनिकीकरण में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया, जो सुधार आंदोलन थे वे मुख्य रूप से दो वर्णो में बॉटे जा सकते हैं।

1. ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज तथा अलीगढ़ आन्दोलन जिन्होंने अपने अपने क्षेत्र में सुधार का प्रयत्न किया।

2. .दूसरा पुर्नवीकरण आन्दोलन जैसा कि आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन तथा देवबंद आन्दोलन जिनका मुख्य उद्देश्य अपने पक्ष का पुनरुद्धार करना था। दोनों प्रकार के आन्दोलन भिन्न सीमा तक अपने धर्म की सीमा को सुधारने का प्रयत्न कर रहे थे और अपने प्राचीन पवित्रधर्म की दुहाई देते थे। दोनों में भेद केवल मात्रा का था जो अपनी परम्परा, तर्क तथा अंतरात्मा पर निर्भर थी।

इन जनसुधार आंदोलनों का एक अन्य पक्ष यह भी था कि वे ऐसे धार्मिक और सामाजिक सुधार चाहते थे, जिनके लिए प्राचीन विश्वासों व परम्पराओं को चुनौती देनी पड़ी। भारत में लगभग सभी सामाजिक कुरीतियां धार्मिक मान्यताओं पर आधारित थीं इसलिए धर्म का सुधार किये बिना कुछ भी संभव नहीं था। एक बात यह भी थी कि भारतीय जीवन के भिन्न-भिन्न पक्षों में निकट का संबंध था। इससे हम देखेगें कि सामाजिक और धार्मिक सुधार एक दूसरे के बिना संभव नहीं थे और उन्होंने एक दूसरे को प्रभावित भी किया। उदाहरण के रूप में स्त्री उद्धार के साथ-साथ उसका धार्मिक कल्याण भी हुआ। सती, शाश्वत, वैधव्य तथा देवदासी प्रथा के समाप्त हुये बिना उसका सामाजिक कल्याण संभव नहीं था और इसी परिवर्तन के परिणाम स्वरूप ही उसे मताधिकार मिला और देश के उच्चतम पद अर्थात् प्रधानमंत्री जैसे पद प्राप्त करने में सक्षम हुई।" 38

*** सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र के सुधार आंदोलन**

समाज	संस्थापक का नाम	स्थापना वर्ष
* ब्रह्म समाज	राजाराममोहनराय	20 - अगस्त 1828
* वेद समाज	राधाकान्त अग्निहोत्री	1840
* प्रार्थना समाज	डॉ.आत्माराम पांडुरंग आठवले	1867

* आर्य समाज	स्वामी दयानंद सरस्वती	10 - अप्रैल, 1875
* रामकृष्ण मिशन	स्वामी विवेकानन्द	9 - दिसम्बर, 1875
* थियोसोफिकल सोसायटी	डा. एनी बेसेन्ट	1882

* अन्य हिन्दू सुधारक एवं समाजसेवक आंदोलन

मुस्लिम धर्म सुधारक आन्दोलन -- इसके अन्तर्गत तीन आंदोलन मुख्य हैं जैसे--

1.वहाबी आंदालन

2.अलीगढ़ आदोंलन

3.देवबन्द शाखा

सिक्ख सुधार आन्दोलन

1.पारसी सुधार आन्दोलन

2. स्त्री उद्धारक आन्दोलन

सामाजिक-धार्मिक क्षेत्र के सुधार आन्दोलन

***ब्रह्म समाज**

जीवन परिचय: ---

राजाराम मोहनराय का जन्म 22 मई सन् 1772 को बंगाल के हुगली जिले के राधानगर ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम रमाकान्त राय तथा माता का नाम तारिणी देवी था। उनके पिता वैष्णव तथा माता शाक्त थी। उनके परपितामह कृष्णचंद बेनर्जी एक सुप्रसिद्ध व्यक्ति थे और बंगाल के नबाब के यहॉ सेवकार्य करते थें स्थानीय शासन की सेवा के पुरस्कार स्वरूप उन्हें 'राय' की उपाधि प्रदान की गई। तब से बेनर्जी के स्थान पर राय के नाम से उनका परिवार विख्यात हुआ। राममोहन राय को 'राजा' की उपाधि दिल्ली के मुगल सम्राट अकबर द्वितीय ने तब प्रदान की जब उन्होंने राममोहन राय को ब्रिटिश सम्राट के समक्ष अपना मामला प्रस्तुत करने के लिए इंग्लैंड भेजा था। उन्होंने एक राजपूत के रूप में इंग्लैंड की यात्रा की तथा इसी समय से वे राजाराम मोहनराय कहलाने लगे। राजाराम मोहनराय बाल्यकाल से ही प्रतिभाशाली थे। " संस्कृत, फारसी, बंगला, अरबी व अंग्रेजी का अध्ययन करने के पश्चात वे इस्ट इण्डिया कम्पनी के आधीन रंगपुर की कलक्टरी में नौकर हो गये और शीघ्र ही अपनी प्रतिभा के बल पर एक साधारण क्लार्क की स्थिति से उठकर जिले की दीवानगीरी के ऊॅचे पद पर पहुॅच गये। इसी बीच उन्होंने लैटिन, ग्रीक व हिब्रू भाषाओं की जानकारी

प्राप्त कर ईसाई धर्म का गहन अध्ययन किया। हिन्दू धर्मशास्त्र, वेद, उपनिषद तथा वेदान्त आदि का मनोयेग पूर्वक अनुशीलन वे पहले ही कर चुके थे।'' 39

राजाराम मोहनराय के समय में भारतीय समाज सांस्कृतिक अध:पतन की अवस्था में पहुँच चुका था। उस समय पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित होकर तरुण बंगाली ईसाई धर्म की ओर आकर्षित हो रहे थे। धार्मिक और सामाजिक जीवन पूरी तरह से दो धाराओं में विभाजित हो गया था। एक ओर ऐसे व्यक्ति थे जो अंधविश्वासों, रूढ़ियों और धार्मिक संकीर्णताओं में गहरे डूबे हुए थे, समाज के लिए उपयोगी किसी भी नवीन विचार और व्यवहार को स्वीकार करने की बात सोचने में भी असमर्थ थे। दूसरी ओर एक ऐसा वर्ग था जो पाश्चात्य संस्कृति को अपनाकर ईसाई धर्म अपना रहा था। उन्हें अपने देश एवं उसकी संस्कृति हेय लगती थी। ऐसी स्थिति में एक ओर राजाराम मोहनराय ने पादरी प्रचारकों के विरुद्ध हिन्दू धर्म की रक्षा की, दूसरी ओर हिन्दू धर्म में आए झूठ और अंधविश्वासो को दूर करने का भी प्रयत्न किया। 15 वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने मूर्तिपूजा की आलोचना की और अपने पक्ष को वेदोक्तियों से सिद्ध करने का प्रयत्न किया । उन्होंने इस बात को प्रतिपादित किया कि अन्य धर्मो और संस्कृतियों की तुलना में भारतीय धर्म और संस्कृति निश्चित रूप से श्रेष्ठ है, लेकिन इसके साथ ही भारतीय जीवन में व्याप्त कुरीतियों को दूर भी किया जाना चाहिए। यह पुनर्जागरण का सन्देश था और पुनर्जागरण के प्रथम अधिवक्ता राजाराम मोहनराय ही थे।

अत्यधिक वाचन एवं धार्मिक सत्य के प्रति उनके मन की गहरी जिज्ञासा के कारण ही उन्होंने विश्व के सभी धर्मो का गहरा अध्ययन करके तुलनात्मक दृष्टिकोण को अपनाया था। " मोनियर विलियम्स के अनुसार सम्भवत: वे दुनिया के सबसे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने पूरी गम्भीरता, निष्ठा और लगन से दुनिया के धर्मो का तुलनात्मक अध्ययन किया, उनमें निहित सत्य को समझा।'' 40 इन्ही कारणो से राजाराम मोहनराय को हिन्दू धर्म में प्रवृत्त कुरीतियों का ज्ञान हो गया। उन्होंने अपने धार्मिक विचारों के तहत इन त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न किया।

राजाराम मोहनराय के धार्मिक विचार:--

1. एकेश्वरवाद का प्रतिपादन और बहुदेववाद का खण्डन
2. मूर्तिपूजा और बलिप्रथा का विरोध
3. परम्पराओं के अन्धानुकरण का विरोध
4. धार्मिक सहिष्णुता के प्रतिपादन

राजाराम मोहनराय के समाज सुधार सम्बन्धी विचार :--

1. परम्परावादिता का विरोध
2. सती प्रथा का विरोध
3. नारी-स्वातन्त्र्य, नारी -अधिकार, नारी शिक्षा और नारी उद्धार
4. जाति'पॉति का विरोध और जातिगत संकीर्णताओं का विरोध

परिणाम :

1. उपनिषदों के प्रभाव, सभी धर्मो के प्रति सहिष्णुता एवं विभिन्नता में एकता की भावना उत्पन्न करना, तथा मानवमात्र को सदाचार, दयालुता, निर्भयता, प्रेम की शिक्षा देना और रूढ़िवाद के स्थान पर तर्क व बुद्धिवादी दृष्टिकोण पर आधारित विश्वधर्म की स्थापना करने हेतु उन्होंने एक अद्वैती के रूप 20 अगस्त 1828 में ' ब्रह्म समाज' की स्थापना की।
2. सन् 1811 ई. में राजाराम मोहनराय के बड़े भाई श्री जगमोहन की मृत्यु के पश्चात उनकी भाभी को न चाहते हुए भी जबरदस्ती सती होना पड़ा था। तभी राजाराम मोहनराय ने तय किया था कि वे सती प्रथा समाप्त करेंगे। इसके तहत उन्होंने सन् 1818 में सतीप्रथा के उन्मूलन के लिए विख्यात आंदोलन शुरू किया और 1829 में उन्होंने इस संबंध में पुस्तक लिखी। मुख्यतया उनके प्रचार और आंदोलन की वजह से गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैटिक ने विनियन 17 के अन्तर्गत सती प्रथा को अवैध घोषित कर दिया।
3. आधुनिक भारत के वे ऐसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने स्त्रियों की पराधीनता के विरुद्ध विद्रोह और स्त्रियों के अधिकारों का समर्थन किया।

वेद समाज

राजाराम मोहनराय की मृत्यु के बाद देवेन्द्रनाथ टैगोर और केशवचंद सेन ने ब्राह्मण समाज को अधिक प्रगतिशील बनाया। केशवचन्द्र सेन ईसाई धर्म से अधिक प्रभावित होने के कारण ब्रह्म समाज को ईसाई धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार चलाना चाहते थे। अत: देवेन्द्रनाथ व केशवचन्द्र कभी एक मत न हुए और समाज दो दलो में विभक्त हो गया। पहला 'आदि ब्रह्म समाज' और दूसरा 'ब्रह्म समाज' प्रथम को देवेन्द्रनाथ और द्वितीय को केशवचन्द्र सेन चलाते थे। केशवचन्द्र ने इसके प्रचारार्थ पर्यटन प्रारम्भ किया, जिसके परिणाम स्वरूप बम्बई में प्रार्थना समाज की स्थापना डॉ. आत्माराम पांडुरंग आठवले ने की और मद्रास में 'वेदसमाज' की स्थापना राधाकान्त अग्निहोत्री ने की। वेद समाज मुख्य रूप से दक्षिण की जो कुरीतियॉ एवं परम्पराएं थी उनका खण्डन किया। के. के. श्रीधर नायडू ने

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M.S. University of Baroda

1871 ई. में इसका पुनर्गठन कर इसका नाम 'ब्रह्म समाज ऑफ साउथ इंडिया' रखा गया यह समाज दक्षिण भारत का प्रमुख समाज था।

" महाराष्ट्र में 1819 ई. में 'प्रार्थना सभा' नामक एक आस्तिक समाज की स्थापना की गई। परन्तु इसका प्रभाव सीमित था और यह शीघ्र ही छिन्न-भिन्न हो गया। इसके बाद 1867 ई. में एक अन्य अधिक शक्तिशाली आस्तिक संस्था 'प्रार्थना समाज' का निर्माण हुआ। इसके प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार थे --

1. विवेकपूर्ण उपासना
2. जाति-प्रथा को अस्वीकार करना
3. विधवा-विवाह का प्रचार करना
4. स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहित करना
5. बालविवाह का बहिष्कार करना
6. अन्य सामाजिक सुधार करना " 41

प्रमुख कार्य और उद्देश्य:

1. प्रार्थना समाज के कार्यकर्ताओं एवं अन्य लोगों के लिए स्त्री पाठशालाएं खोली गई।
2. अन्तर्जातीय विवाह, विधवा-विवाह और महिलाओं तथा हरिजनों की शोचनीय दशा में सुधार करने की ओर अधिक कार्यरत रहे तथा अछूतोद्धार के लिए संस्थाएं स्थापित की।
3. पंटरपुर में अनाथाश्रम की स्थापना की गई।
4. प्रार्थना समाज की सफलता का श्रेय प्रधानतया जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे को जाता है क्योंकि उन्होंने साहित्य, राजनीति, धर्म, शिक्षा, उद्योग-व्यवस्था समाज आदि में अथक परिश्रम से सुधार लाकर एक उदार समाज सुधारक एवं सच्चे देशभक्त का प्रमाण दिया।
5. प्रार्थना समाज ने एक ईश्वर की उपासना पर बल देते हुए स्वयं को वर्ण व्यवस्था रूढ़िवादिता तथा पुरोहितों के नियंत्रण से मुक्त रखा।

आर्य समाज

संस्थापक परिचय:

संस्थापक का नाम: इसके संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती हैं।

जन्म: 12 फरवरी, 1824 ई. को काठियावाड़ की मौरबी रियासत, गुजरात, के टंकारा गॉव में एक अत्यन्त धार्मिक शिवभक्त ब्राह्मण परिवार में हुआ था।

बचपन का नाम: दो नाम थे। प्रथम दयाल और दूसरा मूलशंकर। जिसमें वे प्रथम नाम से ज्यादा प्रचलित थे।

माता-पिता: इनकी माता का नाम यशोदाबाई था जो धार्मिक स्वभाव की थीं। पिता का नाम करणिजी तिवारी था, जो जमींदार थे तथा लेन-देन का कार्य भी करते थे। वे परम्परावादी थे और पुत्र से आशा रखते थे कि वह परिवार की परम्परा को निभाए।

मृत्यु: 1883 में अजमेर में हुई थी।

जीवन की कुछ प्रमुख घटनाएं :---

1. 14 वर्ष की आयु में पहली बार पिता के कहने पर उन्होंने शिवरात्रि का व्रत किया, पर रात्रि के समय में उन्होंने देखा कि शिवभक्तों द्वारा चढ़ाया हुआ प्रसाद चूहा खा रहा था, तब उनके मन में एक प्रश्न उठा कि अगर भगवान अपने प्रसाद की रक्षा नहीं कर सकता तो हमारी रक्षा कैसे करेगा ? इस घटना से उनका मूर्तिपूजा पर से विश्वास हट गया और उन्होंने दृढ़ निश्चय किया कि वे सच्चे शिव के दर्शन करेगें।
2. 16 वर्ष की अवस्था में छोटी बहन तथा 19 वर्ष की अवस्था में चाचा की मृत्यु ने उन्हें सांसारिक जीवन से मुक्त होने के लिए प्रेरित किया। इसलिए जब पिता ने 19 वर्ष की आयु में उनका विवाह करना चाहा तो उन्होंने घर छोड़ दिया और बाद में कुछ महीनों के बाद हमेशा के लिए घर छोड़कर निकल गए। उस समय उनकी आयु 21 वर्ष की थी।
3. सन् 1845 से 1860 तक यानी 15 वर्ष तक मूलशंकर सच्चे गुरू ज्ञान, आत्मप्रकाश तथा अमरत्व की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान भटकने लगे। इस बीच 24 वर्ष की आयु में उन्होंने स्वामी पूर्णानंद सरस्वती से सन्यासी के रूप में दीक्षा ली और तभी से उनका नाम दयानन्द सरस्वती रखा दिया गया।
4. सच्चे गुरू की यह खोज 1860 ई. में मथुरा के महान वैदिक विद्वान स्वामी विरजानन्द, जो नेत्रहीन थे, पर वह प्रकाण्ड विद्वान थे, उनसे मिलने पर खत्म होती है। स्वामी विरजानंद हिन्दू समाज के दोषों तथा अंधविश्वासों के घोर आलोचक थे। दयानन्द सरस्वती ने तीन वर्ष उनसे ज्ञान प्राप्त किया तथा बाद में सन् 1863 से उनके विचार को पूरी दुनिया में फैलाने का कार्य किया।

प्रमुख कार्य :

1. सन् 1867 में हरिद्वार के कुंभ में "पाखण्ड खण्डिनी पताका" फैलाकर उन्होंने हिन्दू धर्म के अंधविश्वासों, मिथ्या-प्रपंचो, छुआछूत, बाल-विवाह, स्त्रियों के प्रति होने वाले अत्याचारों और विदेशी यात्राओं पर प्रतिबन्ध जैसी सामाजिक कुरीतियों की घोर निन्दा की।
2. धर्म प्रचार और यात्रा क्रम में अक्टूबर 1874 में स्वामीजी बम्बई पहुँचे और 10 अप्रैल 1875 के दिन बम्बई में डॉ. मानिक चन्द्र जी की वटिका 'चिरगॉव' में प्रथम आर्य समाज की स्थापना की। बाद में देश के विभिन्न भागों में आर्य समाज की शाखाएं स्वतः ही स्थापित होने लगी।

प्रमुख उद्देश्य एवं धार्मिक विचार :----

स्वामी दयानन्द मूलतः एक धर्म पुरुष थे। वे आर्यो के धर्म को प्राचीन धार्मिक धरोहर मानते थे और वेद उनके लिए इस धरोहर के मूर्तिमान स्वरूप थे। मान्यता का आधार विशुद्ध वेदान्त ही रहा। उनके कुछ प्रमुख धार्मिक विचार एवं उद्देश्य इस प्रकार हैं---

1. 'वेदों की ओर लौटो' इनका मुख्य नारा था।
2. मूर्ति-पूजा का विरोध ।
3. अवतारवाद, बहुदेववाद का विरोध।
4. भारत का लक्ष्य धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय होना चाहिए।
5. गैर हिन्दुओं को हिन्दू धर्म में लाने हेतु शुद्धि आन्दोलन।
6. एकेश्वरवाद में विश्वास।
7. इस्लाम और इसाई धर्म के प्रति दृष्टिकोण।

रामकृष्ण मिशन

संस्थापक परिचय

संस्थापक का नाम: स्वामी विवेकानन्द

जन्म: 12 जनवरी 1863 को कलकत्ता के प्रतिष्ठित कायस्थ परिवार में हुआ था।

बचपन का नाम: नरेन्द्रनाथ दत्त।

पिता का नाम: विश्वनाथ था, जो कलकत्ता उच्च न्यायलय के सुप्रसिद्ध वकील थे।

माता का नाम: भुवनेश्वरी देवी था। वे अत्यन्त भक्तिमय धार्मिक जीवन जीने वाली व उत्कृष्ट चरित्र वीरांगना महिला थी।

मृत्युः 4 जुलाई 1902 में।

जीवन की कुछ घटनाएं :

1. नवम्बर 1881 में दक्षिणेश्वर के महान संत रामकृष्ण परमहंस से भेट होने पर उन्हें अपने सवाल 'क्या आपने परमात्मा के दर्शन किये हैं? 'का जबाब मिलने की आशा जगी और वे रामकृष्ण परमहंस के शिष्य बने और पांच साल तक उनसे ज्ञान प्राप्त किया। बाद मे अगस्त 1866 में रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु के बाद जब वे 24 वर्ष के थे, उस समय गुरू की आज्ञा पर संसार का कल्याण करने निकल पड़े।

2. " सितम्बर 1893 को अमेरिका के शिकागो शहर में हुई विश्वधर्म परिषद में उपस्थित रहकर हिन्दूधर्म का महत्व विश्व को समझाया।

3. उन्होंने जनसाधारण के कल्याण, धार्मिक परम्पराओं, कुरिवाजों का खंडन करने तथा स्त्रियों के सम्मान, समाज-सुधार आदि के लिए 9 दिसम्बर 1898 में कलकत्ता के पास बेलूर में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की।

प्रमुख कार्य एवं उद्‌देश्यः

धार्मिक क्षेत्र में परिवर्तनः --

1. धर्म और उसकी आवश्यकता।
2. हिन्दू धर्म का सार्वभौम स्वरूप।

सामाजिक क्षेत्र में परिवर्तनः --

1 **अस्पृश्यता** का विरोध।
2. बाल-विवाह।
3. दलितों का उत्थान।
4. आत्म विश्वास पर जोर।
5. शिक्षा संबंधी विचार।

परिणामः रविन्द्रनाथ टैगोर ने उनके बारें कहा था कि-- भारत को समझने के लिए विवेकानन्द को पढ़ना चाहिए।

थियोसोफिकल सोसायटी

संस्थापक परिचय

संस्थापक का नामः डॉ. एनीबेसेन्ट

जन्म: 1867 में आयरलैंड में **मृत्यु:** 1933 मे, हिन्दू धर्म पुनर्जागरण आन्दोलन का सक्रिय नेतृत्व। 1891 में भारत आगमन, 1907 में कर्नल आलकोर्ट की मृत्यु के बाद सोसायटी की अध्यक्ष बनी। 1898 में बनारस में सेन्ट्रल स्कूल की स्थापना की जो 1916 में को बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय बन गया।

स्थापना वर्ष: 1875 में न्यूयार्क में रूसी महिला मैडम बब्लेवेटस्की और कर्नल एस.एस. आलकोर्ट ने स्थापना की। ये दोनों 1879 में भारत आए और 1882 में इस संस्था का अन्तराष्ट्रीय प्रमुख केन्द्र अडयार (मद्रास) को बनाया और 1893 में श्रीमती एनीबेसेन्ट इस संस्था की प्रमुख सदस्या बनी। वह कांग्रेस की पहली महिला अध्यक्षा भी थी।

प्रमुखकार्य:-- वेदान्त का तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति का समर्थन करना।

प्रमुख उद्देश्य:

1. समस्त धर्मो की मूलभूत एकता
2. जीवन का महत्व और विश्व बन्धुत्व का प्रचार
3. बाह्य आडम्बर का विरोध
4. प्राचीन रूढ़ियों रीतिरिवाजों, परम्पराओ विश्वासों और कर्मकाण्ड का प्रबल वैज्ञानिक समर्थन कर प्राचीन आदर्शों और परम्पराओं को पुनरुज्जीवित किया।

परिणाम: यह संस्था सामाजिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय निर्माण कार्यो के लिए महत्वपूर्ण अंग रही है।

अन्य हिन्दू सुधारक एवं समाज सेवक और आन्दोलन

पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर

प्रमुख कार्य एवं उद्देश्य:

1. बालविवाह का विरोध
2. बहुपत्नी प्रथा का विरोध किया और महिला शिक्षा का अभियान तथा परिणाम स्वरूप स्त्रियों की स्थिति में सुधार
3. संस्कृत अध्ययन की नई तकनीक तथा बंगाली में एक आधुनिक गद्य शैली को विकसित किया
4. कलकत्ता के संस्कृत विद्यालय में गैर ब्राह्मणों को प्रवेश दिया तथा वहाँ पाश्चात्य विचारों का अध्ययन करवाया।

परिणाम: हिन्दू विधवा पुनर्विवाह विधेयक 1856 में उनके प्रयासों से पारित किया गया।

गोपाल हरि देशमुख

प्रमुख कार्य एवं उद्देश्य:

1. लोकहितवादी से प्रसिद्धि
2. महाराष्ट्र में नई शिक्षा एवं समाज सुधार के प्रर्वतक
3. हिन्दू परम्परावादियों का विरोध
4. धार्मिक तथा सामाजिक समानता की शिक्षा

एम.जी. रानाडे:

प्रमुख कार्य एवं उद्देश्य:

1. 1887 में इंडियन नेशनल सोशल कांफ्रेस की शुरुआत।
2. प्रार्थना समाज के मुख्य सदस्य थे।

गोपाल गणेश अगरकर

प्रमुख कार्य एवं उद्देश्य:

1. महाराष्ट्र के प्रमुख चिंतको में से एक
2. भारत के बीते समय के झूठे महिला मंडल के लिए परम्परा में पूर्णत: अंधविश्वास का विरोध किया तथा मानव तर्क शक्ति को अत्यधिक महत्व दिया।

परिणाम: बी.जी.तिलक, वी.के. चिपलूंकर एवं माधवराव नामजोशी के सहयोग से इन्होंने 1884 में पून में दक्खन शिक्षा समाज की स्थापना।

ज्येतिबा फुले

प्रमुख कार्य एवं उद्देश्य: अपने सत्य शोधक समाज (1873) के माध्यम से जीवन पर्यन्त उच्च जाति के वर्चस्व एवं ब्राह्मण श्रेष्ठता के विरुद्ध संघर्ष किया।

इन्होंने महाराष्ट्र में विधवा पुनर्विवाह तथा महिला शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभाई

तुलसीराम (शिवदयाल सावक)

प्रमुख कार्य एवं उद्देश्य: 1861 में आगरा में एकेश्वरवादी सिद्धान्त के प्रचार के लिए उन्होंने राधास्वामी सत्संग की स्थापना की।

शिवनारायण अग्निहोत्री

प्रमुख कार्य एवं उद्देश: 1887 में लाहौर में देव समाज की स्थापना की, इनके उद्देश्य भी आर्यसमाज जैसे थे सिर्फ एक नई चीज थी वह थी गुरू की सर्वोच्चता। ये लोग गुरू को भगवान मानकर पूजा करते थे।

गोपाल कृष्ण गोखले

प्रमुख कार्य एवं उद्देश्य:

1. प्रसिद्ध उदारवादी राष्ट्रीय नेता एवं प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता थे।
2. 1905 में बम्बई में 'भारत सेवक समाज' की स्थापना की, जिसका उद्देश्य मातृभूमि की सेवा के लिए भारतीयों को कई क्षेत्रों में शिक्षित करना था।

विरेश लिंगम पंतुलु

लिंगम पंतुलु 19 सदी के उत्तरार्ध में दक्षिण भारत के सर्वप्रमुख समाज सुधारक थे।

परिणाम: -- विधवा पुनर्विवाह के उद्देश्य से उन्होंने आंध्रपदेश में 1878 में राजामुंडी सोशल रिफार्म एसोसियेशन की स्थापना की।

मुस्लिम सुधार आंदोलन

वहाबी आन्दोलन (शाह वली उल्लाह- 1702-62)

प्रमुख कार्य एवं उद्देश्य:

1. मुसलमानों की पाश्चात्य प्रभावों के विरुद्ध सर्वप्रथम प्रतिक्रिया
2. यह पुनर्जारणवादी आन्दोलन था।
3. शाह वलीउल्लाह अठारहवीं शताब्दी में भारतीय मुसलमानों के प्रथम नेता थे, जिन्होंने भारतीय मुसलमानों में हुई गिरावट पर चिन्ता प्रकट की थी।
4. उन्होंने मुसलमानों के रीति'रिवाजों तथा मान्यताओं में आई कुरीतियों की ओर ध्यान दिलाते हुए इस आन्दोलन की शुरुआत की और 1870 तक चला।

अलीगढ़ आंदोलन (सर सैयद अहमद खान- 1817-98)

प्रमुख कार्य एवं उद्देश्य:

1. मुसलमानों के सामाजिक तथा शैक्षणिक उत्थान का प्रयास।
2. कुरान तथा धार्मिक कानून की विवेकसम्मत व्याख्या देना।

3. हिन्दू-मुस्लिम को समाज की दो आंखे बताई परंतु अन्तिम समय तक ब्रिटिश समर्थक एवं कांग्रेस विरोधी थे।
4. अंग्रेजी शिक्षा के समर्थक थे, इसलिए 1875 में एग्लो मुस्लिम स्कूल की स्थापना की तथा मुहम्मडन एजूकेशनल कान्फ्रेंस इस 1886 को स्थापना की।

देवबंद आन्दोलन (मुहम्मद कासिम ननौत्वी- 1830-80) रशीद अहमद गंगोही (1828-1905)

प्रमुख कार्य एवं उद्देश्य:

1. मुस्लिम संप्रदाय का नैतिक एवं धार्मिक पुनरुद्धार शुरू किया।
2. उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिलान्तर्गत देवबन्द से आन्दोलन शुरू होने की वजह इसका नाम देवबन्द आन्दोलन पड़ा।
3. उन्होंने मुस्लिम संप्रदाय के लिए धार्मिक नेताओं को प्रशिक्षित करने के विचार से देवबंद में 1866 ई. में एक विद्यालय की स्थापना की।

पारसी सुधार आन्दोलन

संस्थापक का नाम: नारोजी फरदोनजी (दादाभाई नौरोजी- आर. के. कामा)

प्रमुख कार्य एवं उद्देश्य: 1851 में कुछ अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त पारसियों ने 'रहनुमाए मजदाय स्नान' सभा गठित की जिसका उद्देश्य पारसियों की सामाजिक अवस्था का पुनरुद्धार करना और पारसी धर्म की पुन: प्राचीन शुद्धता को प्राप्त करना था।

*** राजनैतिक क्षेत्र में परिवर्तन**

1858 के अधिनियम द्वारा भारत के प्रशासन में अधिक परिवर्तन नहीं किये गये। परन्तु अब गवर्नर-जनरल जो अब क्राउन का प्रतिनिधि था अतएव उसे ' वाइसराय' कहा जाने लगा और उसने कार्यकारी परिषद के सदस्यों की संख्या चार निश्चित की। जो बाद में 1861 में पांच, 1874 में 6, 1892 में 10 से 16 तक की गई जो आगे लगातार बढ़ती गई।

सेना का पुनर्गठन:--

1857 ई. की क्रान्ति के पश्चात् अंग्रेजों ने महसूस किया कि अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए उन्हें एक से अधिक सुगठित व कुशल सेना की आवश्यकता है। इसलिए सेना के पुनर्गठन के लिए उन्होंने

समय-समय पर समितियों का गठन किया ताकि उनका सेना अधिक सशक्त, संगठित व कारगर बन सके।

प्रशासनिक विकेन्द्रीयकरण:

1818 में चतुर्थ मराठा युद्ध के उपरान्त और 1833 के चार्टर एक्ट के अनुसार कंपनी के प्रदेशों, विधान परिषदों तथा वित्त का केन्दियकरण हो गया। लेकिन 1861 के भारत परिषद अधिनियम ने कानून बनाने की इस प्रक्रिया को उलट दिया तथा वैधानिक विकेन्द्रियकरण की ओर अग्रसर हुए। केवल एक संरक्षण था कि इन सरकारों का नया कानून बनाने से पूर्व गर्वनर जनरल की अनुमति प्राप्त करनी होती थी। प्रान्तों में विधान परिषदे स्थापित की गई। 1882 में प्रान्तों को निश्चित सहायता देने की पद्धति समाप्त कर दी गई तथा विभाजित मदों की पद्धति लागू कर दी गई अर्थात् आबकारी, भूमिकर, राजकीय मुद्रा-वन तथा पंजीकरण इत्यादि से प्राप्त धन को केन्द्र तथा प्रान्तीय सरकारों में बराबर बॉट दिया गया।

स्थानीय निकाय:

1861 में वैधानिक तथा वित्तीय विकेन्द्रीयकरण की जो नीति अपनाई गई थी उससे यह संभव हुआ कि नगर पालिकाओं तथा जिला परिषदों के रूप में स्थानीय स्वशासन का विकास हो। नगर पालिकाओं की आवश्यकता को स्वीकार किया गया तथा बंगाल में 1864 तथा 1868 मे, मद्रास में 1865, पंजाब के लिए 1867 और आधुनिक उत्तर प्रदेश जिसे तब संयुक्त प्रान्त कहते थे, 1868 में अधिनियम पारित कर नगरपालिकायें बनाई गई।

शैक्षण्कि और साहित्यकला

हमारे देश में प्राचीनकाल से शिक्षा का अत्यधिक महत्व है। शिक्षा मनुष्य के सर्वांगिक विकास, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति तथा सभ्यता और संस्कृति के उत्थान के लिए अनिवार्य है। भारतवासियों ने शिक्षा के इस गहन महत्व को समझ लिया था। इसी के फलस्वरूप भारत के सुदूर अतीत में भी शिक्षा की सुन्दर व्यवस्था की गई थी। हर एक समय के दरम्यान इन शैक्षणिक संस्थाओं में तथा शिक्षण में कुछ न कुछ परिवर्तन आते ही रहे हैं, वह चाहे राजा के परिवर्तन से, मुसलमान के आगमन से, बुद्धों के आगमन से हो या फिर अंग्रेजों के आगमन से लेकर देश के आजाद होने तक और आजादी के बाद भी शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन आते रहे हैं। यहॉ मैंने वैदिक काल से नवजागरण काल तक शैक्षणिक संस्थाओं में हो रहे परिवर्तन को दर्शाने का प्रयत्न किया है। जो इस प्रकार हैं--

1. वैदिक समय में शिक्षा का स्वरूप

2. बौद्धिक समय में शिक्षा का स्वरूप
3. मुस्लिम समय में शिक्षा का स्वरूप
4. ब्रिटिश के समय में शिक्षा का स्वरूप

1.वैदिक समय में शिक्षा का स्वरूप

वैदिककाल में शिक्षा के लिए अवधि पहले से तय होती थी। उसी के आधार पर बच्चों को शिक्षा दी जाती थी। विद्यार्थियों को शिक्षा प्राप्ति हेतु गुरुकुल में जाना पड़ता था। वहॉ पर उनको गुरू के साथ वर्षो रहकर शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती थी। वैदिक काल में शिक्षण संस्थाओं के कुछ रूप होते थे। जैसे--

चरण: इन चरणों में किसी एक विशेष शाखा का अध्ययन किया जाता था।

परिषद: इस शब्द का अर्थ विद्वानों की सभा से हे। वस्तुत: यह विभिन्न चरणों का समूह था।

सम्मेलन: स्थानीय परिषदों के अतिरिक्त कभी-कभी बड़े-बड़े राजा अपने दरबारों में देश- के योग्य तथा उत्तम विद्वानों को धार्मिक विषयों पर शास्त्रार्थ हेतु आमंत्रित करते थे जिसे सम्मेलन कहा जाता था।

परिव्राजकाचार्य : शिक्षा की उपर्युक्त नियमित संस्थाओं के अतिरिक्त कुछ आचार्य एक स्थान से दूसरे स्थान तक भ्रमण करके विद्या का प्रसार करते थे। जिन्हें 'परिव्राजक' कहते थे।

शिक्षा केन्द्र: वैसे तो वैदिककाल में अधिकांश शिक्षा गुरु-गृहों अथवा गुरुकुल में होती थी पर इसके अलावा भी भारत में अन्य कई दूसरे शिक्षा केन्द्र भी थे, जैसे-- तक्षशिला, पाटलिपुत्र, कन्नौज, मिथिला, धार, मालखण्ड, कल्याणी तथा तंजौर आदि।

बौद्धिक काल

बौद्ध शिक्षा धर्म प्रधान थी। उसमें ऊॅच-नीच का भेदभाव देखे बगैर सबको शिक्षा दी जाती थी। उसमें निम्नलिखित विषयों का समावेश होता था यथा- बौद्ध धर्म, साहित्य, त्रिपटिक, सुतन्त, विनय, धम्म आदि। इसके अलावा लौकिक पाठ्यक्रम भी होता था जिसमें निम्न विषयों का समावेश होता था।

सामान्य विषय: लेखन, गणित, और शास्त्रार्थ

कला कौशल: शिल्प, कलाएं, वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला और संगीतकला।

व्यावसायिक विषय: कृषि, पशुपालन, चिकित्सा।

सैनिक शिक्षा: सारथि-विद्या, धनुर्विद्या तथा मल्ल-विद्या, धर्मदर्शन, चिकित्सा, सैनिक शिक्षा।

इसके अलावा राज्य व्यवस्था और प्रशासन न्याय शास्त्र, तर्कशास्त्र, नक्षत्र-फल, गणित विद्या भी सिखाई जाती थी। इनके शिक्षा का माध्यम लोकभाषा (पाली) थी। प्रारम्भ में स्त्रियों को संघ में सम्मिलित नहीं किया जाता था बाद में स्त्रियों को न केवल संघ में प्रवेश दिया गया बल्कि उनके लिए अलग संघों की व्यवस्था भी की गई और स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन दिया गया। बौद्ध शिक्षा पद्धति में तक्षशिला, नालन्दा आदि महान अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं को जन्म दिया, जिन्होंने विदेशों को भी आकर्षित किया। आधुनिक शिक्षा पद्धति की जन्मदाता बौद्ध शिक्षा ही थी।

मुस्लिम शिक्षा

मुस्लिमों को भारत में रहने का उद्देश्य नहीं था, वे तो भारत को सिर्फ लूटने ही आए थे पर बाद में वे यहीं के होकर रह गये। मुसलमान भारत की संस्कृति से काफी प्रभावित थे। इसलिए उन्होंने इस संस्कृति का नाश कर मुस्लिम संस्कृति का प्रचार करना शुरू किया। उनका उद्देश्य भारतीयों को किसी भी तरह से मुस्लिम बनाना था। वे हिन्दू संस्कृति को नष्ट करके उसके स्थान पर मुस्लिम संस्कृति का प्रचार करना चाहते थे। इसके विपरीत कुछ शासक उदार थे जो सिर्फ शिक्षा को प्रोत्साहन देते थे।

मुस्लिम शिक्षा के उद्देश्य:--

1. इस्लाम धर्म का प्रचार करना
2. इस्लाम के बन्दों में ज्ञान का प्रसार करना
3. चरित्र निर्माण करना
4. मुस्लिम संस्कृति का प्रचार करना
5. मुस्लिम शासन का विस्तार करना
6. सांसारिक ऐश्वर्य प्राप्त करना

ब्रिटिश काल

शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजों ने कई परिवर्तन किये। 1833 ई. में अंग्रेजों ने भारत में सीमित शिक्षा को प्रोत्साहन देने की नीति अपनाई थी। मैकाले के अनुसार उनका मुख्य ध्येय शिक्षा द्वारा एक ऐसी श्रेणी उत्पन्न करना था जो रक्त और रंग से भारतीय हो परन्तु अपनी प्रवृत्ति, विचार व नैतिक मापदण्ड प्रज्ञा से अंग्रेज हो परन्तु वे कम्पनी के निम्न स्तरीय कार्यभार को संभाल सके। हालांकि शिक्षा के

प्रसार से जब भारतीयों में जागृति आई तो अंगेज सतर्क हो गये तथा शिक्षा राजनीतिक नियंत्रण के आधीन आ गई।

भारत में शिक्षा आयोग

1.आयोग / समिति का नाम: जेम्स टामसन प्लान

वर्ष: 1843

मुख्य सिफारिशें: यह देशी भाषा द्वारा ग्रामीण शिक्षा की विस्तृत योजना थी।

परिणाम: अंग्रेजी भाषा केवल कॉलेजों तक सीमित रह गई, एक शिक्षा विभाग का गठन किया गया।

2.आयोग/समिति का नाम: वुड का डिस्पैच

वर्ष: 1854

मुख्य सिफारिशें: कंपनी के अधीनस्थ पांच प्रातों में जन अनुदेश के लिए एक-एक विभाग खोला जाए तथा कलकत्ता, मद्रास एवं बम्बई विश्वविद्यालयों की स्थापना की जाए। इसमें उच्च शिक्षा का सबसे अच्छा माध्यम अंग्रेजी बताया गया।

परिणाम: 1855 में जन अनुदेश विभाग तथा 1857 में कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बई में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई।

3. आयोग/ समिति का नाम: हंटर शिक्षा आयोग:

वर्ष: 1882-1883

मुख्य सिफारिशें: इसकी सिफारिशें प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा तक ही सीमित थीं। प्राथमिक शिक्षा स्थानीय भाषा में हो, शिक्षा में निजी प्रयत्नों को बढ़ावा देना चाहिए।

परिणाम: पाश्चात्य ज्ञान के अलावा भारतीय व प्राच्य भाषाओं के पठन-पाठन में विशेषता देखने को मिली। 1882 में पंजाब व 1887 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय स्थापित किये।

4.आयोग/ समिति का नाम: रैले आयोग

वर्ष: 1902

मुख्य सिफारिशे: इसकी सिफारिशें विश्वविद्यालय शिक्षा तक सीमित थी। विश्वविद्यालयों को अध्ययन व शोध के लिए प्राध्यापकों की नियुक्ति करना चाहिए। गवर्नर जनरल को विश्व विद्यालयों की क्षेत्रीय सीमाएं निश्चित करने का अधिकार दिया गया। इस आयोग ने प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालयों तक शिक्षा का अधिकार दिया।

परिणामः इस आयोग के मद्देनजर रखते हुए 1904 का भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम पारित किया गया, जिससे विश्वविद्यालय पर नियंत्रण बढ़ा।

5.आयोग/ समिति का नामः सैडलर आयोग

वर्षः 1917-19

मुख्य सिफारिशें: शिक्षा के सन्दर्भ में सिफारिशें दी। इसके अलावा महिला शिक्षा के लिए स्वायत्तता पूर्ण संस्थाओं की स्थापना तथा व्यावहारिक शिक्षा पर भी जोर दिया।

परिणामः 1916 से 1922 के बीच मैसूर, पटना, बनारस, अलीगढ़, ढाका, लखनऊ तथा उस्मानिया विश्वविद्यालय खोले गये।

* साहित्यक क्षेत्र में परिवर्तन

देशी भाषाओं का प्राचीन इतिहास लगभग संपूर्ण रूप से काव्यातमक था एवं प्राचीन साहित्य की यह परम्परा अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के पहले भाग तक जारी रही। कालान्तर में इस प्राचीन कविता में कमजोरी के लक्षण दिखाई पड़े एवं इसमें ताजगी का अभाव एवं पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति शामिल हुई। मूल्यों में पतन के परिणाम स्वरूप कविता साहित्य में भक्ति से रीति की ओर परिवर्तन प्रारंभ हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव में भारतीय कविता ने पुन: ताजगी प्राप्त की। यह नये रूपों और गीतो के साथ प्रयोग किये जाने लगे। रंगमंच के उद्‌भव होने से आधुनिक युग की सृजनशील चेतना को एक और दिशा प्राप्त हुई। रंगमच की उपस्थिति ने नाट्‌य साहित्य को प्रचुर गति प्रदान की जो क्लासिकीय संस्कृत नाटक और पश्चिमी नाटकों से प्रभावित था। पश्चिम के प्रभाव के परिणाम स्वरूप भारतीय साहित्य की एक पूर्णत: नई शाखा सामने आई। यह थी उपन्यास, और लघु कहानी। इसके परिणाम स्वरूप भारतीय साहित्य में एक नवीन सामाजिक यथार्थवाद का सूत्रपात हुआ। इन साहित्यक विधाओं की चर्चा विस्तार पूर्वक इसी अध्याय के बिन्दु चार में की गई है इसलिए पुन: उसकी चर्चा करना मात्र पृष्ठपेषण ही होगा।

2. पूर्ववर्ती साहित्य और नवजागरण

पूर्ववर्ती साहित्य कि अगर बात की जाय तो नवजागरण काल से पहले आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल आता है। साहित्य की बात करें तो साहित्य के इतिहास के किसी भी काल का प्रारम्भ अनायास ही नहीं होता है। युग विशेष की राजनीतिक एवं सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के अनुरूप ही साहित्यिक काल जन्म लेकर विकसित होता है और तदनुसार ही अपने अंत से दूसरे काल

का निर्माण कर जाता है। हिन्दी साहित्य के चारों काल परम्परागत युग विशेष की परिस्थितियों से ही निर्मित हुए हैं। एकाएक किसी काल का निर्माण नहीं हुआ।

हिन्दी साहित्य का आरंभ ऐसे समय होता है, जब भारत का पश्चिमी भाग मुसलमान जाति के आक्रमणों से आक्रांत था और उत्तर भारत के प्रायः सभी प्रमुख नरेशों की दृष्टि उस ओर खिंची हुई थी। भारत का पश्चिमोत्तर प्रदेश इन्हीं के हाथों में था। बर्बर भावनाओं से भारत को लूटने के उद्देश्य से लालायित आक्रमण बढ़ते ही जा रहे थे। उनसे सामना करने के लिए दृढ़ और युद्धप्रिय जाति की आवश्यकता थी इसलिए उन्हें जागृत करने तथा युद्ध में उनका हौसला बढ़ाने के लिए वीर काव्य की रचनाएं की गई। ये काव्य युद्ध के समय गाये जाते थे ताकि वीर योद्धा युद्ध में अपना मनोबल एवं साहस बनाए रखें। इस प्रकार की रचनाएं आदिकाल में दिखती हैं उस समय की ज्यादातर रचनाएं काव्यमय हुआ करती थी। गद्य स्वरूप न के बराबर था। उस मसय का साहित्य अपभ्रंश भाषा में लिखा गया था। इसलिए उस समय के साहित्य से हम नवजागरण काल की तुलना नहीं कर सकते हैं। लेकिन नवजागरण की तुलना हम भक्तिकाल और रीतिकाल से करेगें। जहॉ हमें हिन्दी साहित्य का प्रचुर भंडार मिलता है।

सबसे पहले हम भक्तिकालीन साहित्य एवं भक्तिकालीन मुख्य कवियों के बारे में जानेंगे। बाद में रीतिकाल एवं नवजागरणकाल के साहित्य की चर्चा करेगें।

भक्तिकाल

जैसा कि हम जानेत हैं कि किसी भी साहित्य के काल का जन्म तुरन्त नहीं होता है। इसके लिए समय के साथ-साथ धार्मिक, सांस्कृतिक, एवं राजनैतिक कारण जबाबदार होते हैं। भक्तिकाल का उदय भी इन्हीं परिस्थितियों के फलस्वरूप हुआ है।

आदिकाल में पश्चिम भाग के मुसलमानों के आक्रमण बढ़ गये थे और धीरे-धीरे उन्होंने अपना आधिपत्य जमा लिया। मुस्लिम राजाओं ने हिन्दू प्रजा को जबरदस्ती धर्मपरिवर्तन कराकर मुस्लिम बनाना प्रारम्भ कर दिया था। वे लोग अपने धर्म का प्रचार करके 'खुदा हमारे साथ है' का नारा लगाकर भारत को न केवल लूट रहे थे, लेकिन मंदिर, ग्रंथो का नाश कर रहे थे। यह वह समय था जिस समय भारत की जनता को एक होकर लडना चाहिए था उस समय वे लोग आपस में ही लड़ रहे थे। कहा भी जाता है कि " विनाशकाले विपरीत बुद्धि'' धार्मिक रूप से भी सबको विश्वास हो गया था कि भगवान नहीं हैं क्योंकि मुसलमान उनको कष्ट पहुंचा रहे थे और उनकी सहायता करने वाला कोई नहीं था। भाक्तिकाल के प्रारम्भ में भारतीय जनता पूर्ण रूप से टूट गई थी, साथ ही उनका मनोबल

भी टूट चुका था। इसी जनता को पुन: धर्म के मार्ग पर लाने के लिए भक्तिकाल का उदय हुआ। जिसके प्रमुख सूत्रधार के रूप में तुलसीदास, सूरदास, कबीर, जायसी तथा नानक आदि थे। इन लोगों ने अपनी रचनाओं एवं विचारधाराओं के माध्यम से मृतप्राय भारतीय जनता में प्राण फूँकने काम किया।

भक्तिकाल के प्रारम्भ में ही भक्ति के दो रूप सामने आए, एक सगुण भक्ति और दूसरा निर्गण भक्ति।

सगुण भक्ति: ईश्वर के साकार रूप को मानकर उनकी भक्ति करना यानी सगुण भक्ति। ये लोग मूर्तिपूजा मे विश्वास करते हैं।

निर्गुण भक्ति: ईश्वर को निराकार मानना यानी जो ईश्वर के कोई आकार-प्रकार को न मानने वाले निर्गुण कहलाए। वे मात्र अपने अन्तरमन में भगवान को देखने का प्रयत्न करते हैं।

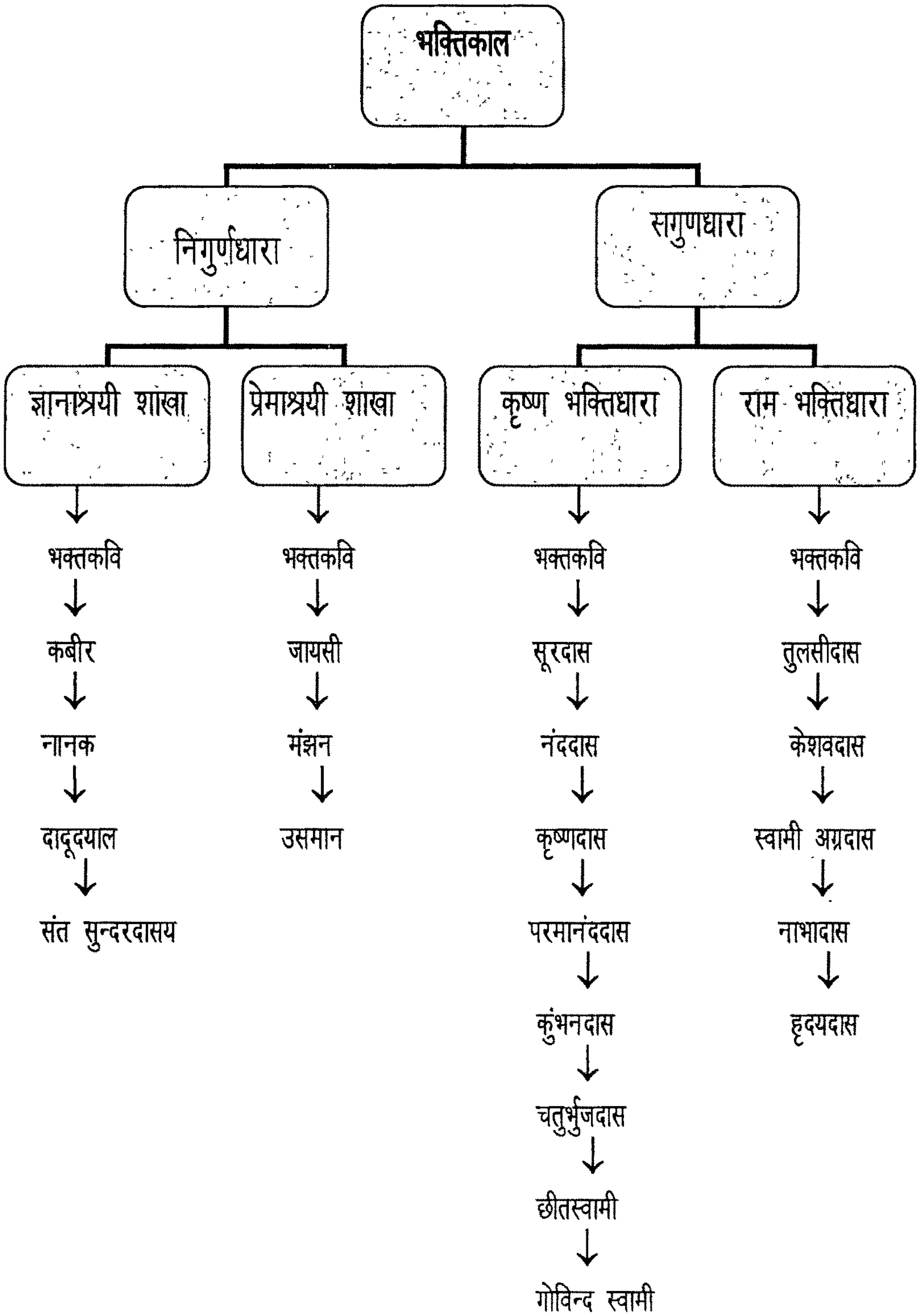
भक्तिकाल
निर्गुणधारा
सगुणधारा
ज्ञानाश्रयी शाखा
प्रेमाश्रयी शाखा
कृष्ण भक्तिधारा
राम भक्तिधारा
भक्तकवि
कबीर
नानक
दादूदयाल
संत सुन्दरदासय
भक्तकवि
जायसी
मंझन
उसमान
भक्तकवि
सूरदास
नंददास
कृष्णदास
परमानंददास
कुंभनदास
चतुर्भुजदास
छीतस्वामी
गोविन्द स्वामी
भक्तकवि
तुलसीदास
केशवदास
स्वामी अग्रदास
नाभादास
हृदयदास

ज्ञानाश्रयी शाखा

ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग दो रूप हैं। जो विरोधी न होकर परस्पर संबंध वाले हैं। ज्ञान की अनुभूति ही भक्ति है। ज्ञान मार्ग पर चलने वाले आचार्यो ने ज्ञान के अनुभूत पक्ष पर बल दिया है। बिना अनुभूति के ज्ञान मात्र वाक्यज्ञान है। जिससे कुछ भी सिद्ध नहीं होता है। भक्ति को मिथ्या माया मानने वाले तथा ज्ञानमार्ग को ही एक मात्र सच्ची साधना मानने वाले आचार्य शंकर ने भी ज्ञान के अनुभूति पक्ष पर बल दिया। यह शाखा भारतीय ब्रह्म ज्ञान और योगसाधना को लेकर तथा उसमें सूफियों के प्रेमतत्व को मिलाकर उपासना के क्षेत्र में अग्रसर हुई है और सगुण के खंडन में उसी जोश के साथ तत्पर रही है। इस शाखा की रचनाएं साहित्यिक नहीं हैं- फुटकल दोहों या पदों के रूप में हैं। जिनकी भाषा और शैली अधिकतर अव्यवस्थित और ऊटपटांग है। कबीर आदि दो-एक प्रतिभा संपन्न संतों को छोड़कर और अन्य संतों में ज्ञानमार्ग की सुनी सुनाई बातों का पृष्ठपेषण तथा हठयोग की बातों के कुछ रूपक, भद्दी तुकबंदियों में मिलती है। मैनें यहॉ इन ज्ञानाश्रयी कवियों की थोड़ी चर्चा की है।

1. कबीरदास

जन्म : संवत 1455 में एक जुलाहा परिवार में हुआ था।

माता-पिता : नीमा और नीरू, कुछ विद्वानों के अनुसार इनका जन्म एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था। जनश्रुति के अनुसार इनकी पत्नी का नाम लोई था।

पुत्र-पुत्री : पुत्र का नाम कमाल और पुत्री का नाम कमाली था।

मृत्यु : संवत 1551 में इनकी मृत्यु जनश्रुति के अनुसार मगहर में हुई मानी जाती है।

कृतियां : साखी, सबद और रमैनी । साखी के अन्तर्गत शिक्षा और सिद्धान्तों का निरूपण किया गया। सबद के अन्तर्गत गेयपद संग्रहित हैं। रमैनी में रहस्यवादी और दार्शनिक विचार के पद संग्रहित हैं। वे उत्कृष्ट रहस्यवादी, समाजसुधारक, पाखण्ड के आलोचक, मानवतावादी और समानतावादी कवि थे।

मुख्य उद्देश्य :

1. निर्गुण ईश्वर की उपासना
2. गुरू को पहला महत्व देना
3. धर्मग्रंथ का विरोध
4. हिन्दू मुस्लिम एकता
5. जाति-पॉति का खण्डन

6. पाखण्ड का खण्डन

7. सदाचार या पवित्र जीवन पर बल।

2. गुरू नानक

जन्म : संवत- 1526 में लाहौर के समीप तलबंडी नामक गॉव में।

माता-पिता: तृप्ता देवी और कल्लू

पत्नी : सुलक्षणा, जिससे दो पुत्र हुए, श्रीचंद और लक्ष्मीचंद। पति नानक से मतभेद होने से पत्नी मायके चली गई और नानक ने गृहत्याग कर दिया। बाद में इधर उधर घूमते हुए कबीर की भॉंति भक्ति को महत्व देकर समाज में चल रही कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया।

मृत्यु : संवत 1585 में हुई।

कृतियॉं : आदि ग्रन्थ- इनकी रचनाएं संग्रहित है। जपुजी, गुरु ग्रन्थ साहिब, रहिरास संग्रह सोहिला।

मुख्य उद्देश्य :

1. जाति-पॉंति का विरोध
2. ऊॅंच-नीच का विरोध
3. कर्मकाण्ड, मूर्तिपूजा का विरोध
4. कबीर की अपेक्षा अधिक स्थायी एवं प्रभावशाली थे।

3. दादू दयाल

जन्म : संवत्-1591, ई.सन् 1544, अहमदाबाद में । कुछ लोग इन्हें ब्राह्मण कहते थे लेकिन प्रमाणित नहीं होता है। दादू धुनिया मुसलमान कहे जाते थे इनके शिष्य इन्हें रज्जब पीर कहते थे।

मृत्यु : ई. सन् 1603 में।

प्रमुख कृतियॉं : हरडे वाणी, अंगवधू, काशीनगरी प्रचारिणी सभा की ओर से। 1633 साखियॉं तथा 445 पदों का संग्रह प्रकाशित है।

मुख्य उद्देश्य :

1. ब्रह्म को पीयु नाम से संबोधित करते थे।
2. नाम के महत्व को स्वीकार करते थे।
3. मूर्तिपूजा तथा कर्मकाण्ड का विरोध।

4. सन्त सुन्दरदास

जन्म : 1602 ई. में जयपुर राज्य की प्राचीन राजधानी चौसा में हुआ था।

माता-पिता : सती तथा परमानन्द, 6 वर्ष की उम्र से वे दादू के शिष्य हो गये थे। विवाह नहीं किया था।

मृत्यु : संवत् 1746 में सांगानेर में।

प्रमुख रचनाएं : सुन्दर ग्रंथावली में उनके रचित 42 ग्रन्थ प्रकाशित हैं। इसके अलावा सुन्दर विलास, सवैया, ज्ञान समुन्द्र आदि मुख्य कृतियां हैं।

उद्देश्य :

1.गुरू की महत्ता को स्वीकार करना

2. अद्वैत ब्रह्म की उपासना करते थे।

इसके अलावा भी मलूकदास, रैदास, धर्मदास, धरणीदास, दरियासाहब, चरनदास, गरीबदास, जगजीवनदास, दयाबाई, सहजोबाई, चरनदास आदि अन्य संत भी इस धारा के हैं। जिन्होंन कबीर के मूल्यों को स्वीकार किया है। यहॉ सिर्फ कुछ प्रमुख कवियों एवं उनकी कृतियों का परिचय दिया गया है।

ज्ञानाश्रयी शाखा की प्रमुख विशेषताएं :--

1. निर्गुण उपासना
2. निरक्षर कवि
3. जाति-पॉति का विरोध
4. पाखंड का विरोध
5. हिन्दू-मुस्लिम एकता
6. माया से बचने का उपदेश
7. गुरू की महत्ता
8. रहस्यात्मकता
9. काव्य रचना तथा भाषा
10. रस, छन्द और अलंकार

प्रेमाश्रयी शाखा

यह शाखा सूफी कवियों की है, जिनकी प्रेमगाथाएं वास्तव में साहित्य कोटि के भीतर आती है। इस शाखा के सब कवियों ने कल्पित कहानियों के द्वारा प्रेममार्ग को महत्व दिया है। इन साधक कवियों ने लौकिक प्रेम के बहाने उस प्रेमतत्व का आभास दिया है जो प्रियतम ईश्वर से मिलनेवाला है। सूफी कवियों ने जो कहानियॉं ली हैं वे सब हिन्दू राजघरानों से ली हैं। उन कहानियों में कवियों ने आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी किये हैं। हिन्दी में सूफी काव्य की रचना लगभग 14वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक लगभग 600 वर्षों में फैला हुआ है। मुल्ला दाउद के 'चंदायन' काव्य से इस काव्य परम्परा का प्रारम्भ होता है और शेख नसीर के 'प्रेम दर्पण' पर इसकी समाप्ति होती है। सूफी कवि और काव्य परम्परा में मलिक मुहम्मद जायसी तथा उसका महाकाव्य 'पद्मावत' सिरमौर है। इस शाखा के प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

1. जायसी

जन्म : 900 हिजरी अर्थात सन् 1492 में उ.प्र. के जायस नामक गॉंव में। पहले शेरशाह, बाद में गाजीपुर और उसके बाद में भोजपुर महारा जगतदेव के सानिन्ध्य में और अंत में अमेठी के राजा रामसिंह के आश्रय में रहते थे।

मृत्य : 4 रजब 949 हिजरी यानी सन् 1542 में।

प्रमुख रचनाएं : इनके द्वारा कुल 20 रचनाएं हैं जिनमें से केवल तीन ही प्रमाणित हैं। **1.** आखिरी कलाम **2.** अखरावट **3.** पद्मावत और **4.** चित्रलेखा एक लघुकाव्य भी प्रकाशित है।

2 कवि मंझन

कवि परिचय : चुनार यू. पी. के रहने वाले, सत्तारी सम्प्रदाय के शेख मुहम्मदगौर के शिष्य थे।

प्रमुख रचनाएं : मधुमालती, जिसकी रचना 1545 में हुई।

3.उस्मान

कवि परिचय : गाजीपुर के रहने वाले थे। हाजीबाबा के शिष्य।

प्रमुख रचना: चित्रावली सन् 1613 में।

4.शेख नबी

कवि परिचय : जौनुपर जिले के अलदेमऊ नामक स्थान के रहने वाले थे।

प्रमुख रचना: ज्ञानदीप, सन् 1619 में रची गई।

5. कासिम शाह

कवि परिचय: दरियाबाद (बाराबंकी) के रहनेवाले थे।

प्रमुख रचना: हंस जवाहिर, सन् 1736 में।

नूर-मुहम्मद

कवि परिचय: जौनपुर के निवासी थे।

प्रमुख रचनाएं: इन्द्रावती, सन् 1744 में तथा सन् 1764 में अनुराग बांसुरी की रचना।

7. शेख निसार

कवि परिचय: अप्राप्त

प्रमुख रचना: ई. 1790 में युसुफ जुलेखा की रचना।

प्रेमाश्रयी शाखा अथवा सूफी काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएं:—

1. निर्गुण ईश्वर में विश्वास
2. गुरू की महिमा
3. सिद्धि में शैतान को बाधक मानना
4. साधना की चार अवस्थाएं
5. लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की प्राप्ति
6. हिन्दू मुस्लिम एकता
7. रहस्यवाद
8. प्रंबंधात्मकता
9. भाषा, छंद, अलंकार, रस
10. प्रतीक विधान
11. मसनवी शैली

सगुण भक्तिधारा

संत मत हिन्दू और मुस्लिम ऐक्य का प्रयास कर रहा था, लेकिन ये लोग हिन्दू जनता का आलम्बन न बन सकी। परिणाम स्वरूप हिन्दू जनता राम और कृष्ण की ओर आकर्षित हुई। इससे वैष्णव भक्ति का प्रादुरर्भाव हुआ। यह प्रारम्भ तो दक्षिण भारत में हुआ लेकिन शीघ्र ही उत्तर भारत मे फैल गया। इसका प्रधान कारण यह था कि अवध और ब्रज राम और कृष्ण की जन्मस्थली थी। हिन्दी साहित्य में यह काल स्वर्ण युग के नाम से जाना जाता है। कृष्ण भक्त

कवियों में सूरदास का नाम अग्रगण्य था तो राम भक्त कवियों में महात्मा तुलसीदास का नाम विशेष प्रचलित हुआ।

समाज के लोगों को निराकार भगवान की भक्ति करना कठिन लग रहा था और वैसे भी यह मार्ग साधना का मार्ग था। लोगों में मतभेद और असमानताएं फैलने लगी। इसी समय विदेशी आक्रमणकारियों का अत्याचार भी शुरू हो गया था। इसी समय में सूर और तुलसी जैसे कवियों ने राम और कृष्ण का प्रचार करना प्रारम्भ किया। उन्होंने भगवान के सगुण रूप की उपासना की। इस भक्ति ने भगवान की मूर्ति की उपासना और पूजा करना सिखाया। यह लोगों के लिए काफी आसान भी लगा बजाय निर्गुण भक्ति के। यह भक्ति समाज में अच्छी तरह प्रचलित होने लगी। लोगों में श्रद्धा का संचार हुआ इसी समय में तुलसी ने रामचरित मानस और सूरदास ने सूरसागर लिखकर भारतीय जनता की सोच को बदल दिया। लोगों में नया जोश और उत्साह भर आया, इसी समय को लोकजागरण काल भी कहा गया। इस सगुण भक्तिधारा को दो धाराओं में विभाजित किया गया--

1.कृष्ण भक्ति धारा

2.रामभक्ति धारा

कृष्ण भक्तिधारा:

कृष्ण की आराधना तथा भक्ति करने वाला सम्प्रदाय 'कृष्ण भक्ति धारा' कहलाया। हिन्दी का कृष्ण भक्ति साहित्य शृद्ध वातावरण में लिखा गया। उस पर भक्ति दर्शन के सम्प्रदायों का पूरा का पूरा नियंत्रण रहा है। यही कारण है कि कृष्ण भक्ति के सभी सम्प्रदायों के अनुरूप रचे जाने वाले साहित्य को हम दो प्रमुख भागों में बॉट सकते हैं। एक वह जिसका प्रधान लक्ष्य भक्ति दर्शन और भक्ति सिद्धान्त का था और दूसरा वह कृष्ण की लीलाओं से आनंद प्राप्त करता था। इस धारा के दो प्रमुख ग्रंथ श्रीमद्‌भगवत तथा ब्रह्मवैवर्त' पुराण रहे हैं। कृष्ण भक्त कवियों ने इन ग्रंथो से प्रयाप्त सामग्री ली लेकिन मध्यकाल के कृष्ण भक्त साहित्य का प्रधान प्रेरणा स्रोत लोक साहित्य में प्रचलित पद शैली थी जो सूर आदि कवियों में पुष्ट हुई। इन कवियों ने अपनी कल्पना के आधार पर कृष्ण की लीलाओं के विभिन्न प्रसंगों की मौलिक उद्‌भावना प्रकट की है। यह साहित्य हिन्दी साहित्य में शताब्दियों तक चलता रहेगा। इस सम्प्रदाय के प्रमुख कवियों में पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित हुए, हिन्दी ब्रजभाषा के आठ कवि जिन्हें अष्टछाप के कवि के नाम से जाना जाता है यथा- सूरदास, परमानन्द दास, कुंभनदास, कृष्णदास, नंददास, चतुर्भुजदास, गोविंदस्वामी तथा छीतस्वामी थे। इनमे प्रथम चार श्री वल्लभाचार्य जी के (संवत- 1535-1587) और अंतिम चार आचार्यजी के सुपुत्र गोस्वामी श्री विट्‌ठलनाथ

जी के शिष्य थे। ये ब्रज में गोवर्धन पर्वत पर स्थित श्रीनाथजी के मंदिर में कीर्तन सेवा में लीन रहा करते थे और भगवद्‌भक्ति के रूप में पद रचना करते थे। इन कवियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

1. सूरदास

जन्म: संवत- 1535 (1478 ई.) वैशाख शुक्ल पंचमी के आसपास सीहीं नामक गॉव में।

पिता: इनके पिता का नाम पंडित रामदास सारस्वत था। सूरदास जन्मांध थे। वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे और इन्हीं के सम्पर्क में आने से कृष्ण लीला का गान करने लगे। तुलसीदास ने इनकी भक्ति से प्रभावित होकर 'कृष्ण गीतावली' की रचना की। सूर के काव्य का मुख्य विषय 'कृष्ण भक्ति' है। इनके काव्य में जो बालभाव और वात्सल्य भाव दोनों दिखाई देते है, वह अन्यत्र कहीं नहीं दिखाई देता है।

मृत्यु: संवत 1640 में गोवर्धन के पास परसौली नामक गॉव में।

प्रमुख रचनाएं: इनके द्वारा रचित सवालाख पदों की संख्या बताई जाती है। साथ ही इनके द्वारा रचित ग्रथों की संख्या 24 बताई जाती है। लेकिन प्राप्त केवल तीन ही ग्रंथ होते हैं- **1.** सूरसागर **2.** सूरसारावली और **3.** साहित्य लहरी। इसके अलावा अन्य ग्रंथों की सूची इस प्रकार है-- **1.** भागवत भाषा **2.** दशम स्कंध **3.** सूरदास के पद **4.** नागलीला **5.** गोवर्धन लीला **6.** सूर पचीसी **7.** प्राण प्यारी **8.** ब्याहलो **9.** भंवरगीत **10.** सूर रामायण **11.** दानलीला **12.** राधा रस के कौतूहल **13.** मानलीला **14.** सूरसागर सार **15.** नलदम्यन्ती **16.** हरिवंश टीका **17.** रामजन्म **18.** सूर साठी **19.** एकादशी माहात्म्य **20.** सेवाफल **21.** सूर शतक

2. नन्ददास

कवि परिचय: इनका जन्म सूरदास की मृत्यु के पीछे संवत 1625 या उसके आगे तक माना जाता है। इनका पूरा जीवन वृत्त पता नहीं चलता है पर नाभाजी के भक्तमाल से पता चलता है कि इनके भाई का नाम चंद्रहास था। दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता से पता चलता है कि नन्ददास जी तुलसीदास के भाई थे।

प्रमुख रचनाएं: 1. रास पंचाध्यायी **2.** भगवत दशम स्कंध **3.** रुक्मिणी मंगल **4.** सिद्धान्त पंचाध्यायी **5.** रूपमंजरी **6.** रसमंजरी **7.** मानमंजरी **8.** विरहमंजरी **9.** नाम चिंतामणि **10.** अनेकार्थ नाममाला **11.** दानलीला **12.** ज्ञानमंजरी **13.** श्याम सगाई **14.** भ्रमरगीत **15.** अनेकार्थ मंजरी **16.** सुदामाचति **17.** मानलीला। इसके अलावा अन्य दो ग्रंथ- हितोपदेश और नासिकेत पुराण का भी पता चलता है।

3. कृष्णदास

कवि परिचय: ये जाति से शूद्र थे, पर आचार्यजी के बड़े कृपापात्र थे और मंदिर के प्रधान मुखिया थे। राधा-कृष्ण के प्रेम को लेकर श्रृंगार रस के पद ही गाते थे।

मृत्यु: संवत 1600 या उसके आगे पीछे

प्रमुख रचनाएं: 1. चौरासी वैष्णवन की वार्ता 2. जुगलमान चरित्र 3. भ्रमरगीत 4. प्रेमतत्व निरूपण

4. परमानन्ददास

कवि परिचय:

जन्म: संवत 1606 के आसपास, कनौज में माना जाता है। जाति के शायद कनौज ब्राह्मण थे।

प्रमुख रचनाएं: इनके द्वारा 835 पदों का 'परमानंद सागर प्राप्त होता है।

5. कुंभनदास

कवि परिचय: ये भी लगभग परमानंद के समकालीन थे।

प्रमुख रचनाएं: इनके द्वारा रचित न कोई ग्रंथ प्राप्त होता है और न ही प्रसिद्ध है। कुछ फुटकल पद अवश्य मिलते हैं।

6. चतुर्भुज स्वामी

कवि परिचय: कुंभनदास जी के पुत्र और गोसाई विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे।

प्रमुख रचनाएं: द्वादश यश, भक्तिप्रताप और हितजू को मंगल

7. छीतस्वामी

कवि परिचय: पहले मथुरा के एक संपन्न पंडा थे और राजा, बीरबल जैसे लोगों के जजमान थे।

प्रमुख रचनाएं: इनकी रचनाओं का समय संवत 1612 के आसपास माना जाता है।

8. गोविंद स्वामी

कवि परिचय: अंतरी के रहने वाले सनाढ्य ब्राह्मण थे। ये कवि होने के अलावा पक्के गवैये भी थे। तानसेन भी कभी-कभी इनका गाना सुनने आया करते थे।

प्रमुख रचनाएं: इनके नाम से 'गोविन्द स्वामी की कदंबखंडी; नामक उपवन बनाया गया था। इनका रचनाकाल 1600 और 1625 के आसपास माना जाता है।

इसके अलावा हितहरिवंश, गदाधर भट्ट, मीराबाई, स्वामी हरिदास, सूरदास सदनलाल,,, 14श्री भट्ट, व्यासजी रसखान, ध्रुवदास आदि ने भी अपना योगदान दिया और हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाया।

कृष्ण-भक्ति शाखा की प्रमुख विशेषताएं:--

1. कृष्णलीला का वर्णन
2. कृष्ण-काव्य में मौलिकता
3. पुष्टिमार्ग का अनुसरण
4. कान्त, वात्सल्य एवं सख्यभाव की प्रधानता
5. बाललीला वर्णन की प्रधानता
6. वात्सल्य और श्रृंगार रसों की प्रधानता
7. मुक्तक काव्य
8. सीमित छन्दों का प्रयोग
9. ब्रजभाषा काव्य भाषा
10. अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग

2.रामभक्ति शाखा

वैदिक काल में समाज ने मनुष्य के चार वर्ण बनाए थे - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इन चारों वर्णों को कर्मों के आधार पर बनाये गये थे।

ब्राह्मण: जो व्यक्ति वेदोच्चारण एवं वेदो का ज्ञान ग्रहण करता था उसे ब्राह्मण कहा जाता है।

क्षत्रिय: जो शस्त्र विद्या जानता था और अपने देश की रक्षा करता था वह क्षत्रिय कहलाता था।

वैश्य: वाणिज्य, व्यापार से संबंधित जो कार्य करता था उसे वैश्य कहा गया।

शूद्र: जो उपर्युक्त चारों वर्णों की सेवा का कार्य करता था उसे शूद्र कहा गया।

ये सभी वर्ण उनके कर्म विशेष के आधार पर बनाए गये थे लेकिन बाद में ब्राह्मण का बेटा ब्राह्मण बन गया और इसी प्रकार अन्य जातियों का भी यही चलन रहा । ज्ञान चाहे न भी हो लेकिन जाति के आधार पर उनका विभाजन होने लगा। बाद में शूद्र जातियों के लिए मंदिर में प्रवेश तक वर्जित हो गया। उनकी पड़छाई पड़ना भी लोग बुरा मानते थे। धीरे-धीरे सब कुछ अंधश्रद्धा में बदल गया।

इसी समय में रामानंद स्वामी ने वर्णाश्रम व्यवस्था का विरोध कर समाज के चार वर्ण और चार आश्रम की व्यवस्था को मानते हुए उन्हें भिन्न-भिन्न कर्तव्यों में निर्धारित किया। केवल उपासना के क्षेत्र में उन्होंने सबको समान अधिकार दिया। भगवद्भक्ति में किसी भी भेदभाव को आश्रय नहीं दिया। कर्म के क्षेत्र में शास्त्र मर्यादा उन्हें मान्य थी, पर उपासना के क्षेत्र में किसी भी प्रकार की

लौकिक मर्यादा मान्य न थी। वे सभी जाति के लोगों को इकट्ठा करके उपदेश देते थे और राम महिमा का गुणगान करते थे। इनकी परम्परा बाद में तुलसीदास, केशवदास, स्वामी अग्रदास, नाभादास, हृदयराम, प्राणचंद चौहान, सेनापति, गुरू गोविन्दसिंह महाराज, विश्वनाथसिंह आदि ने आगे बढ़ाई। इनमें से मुख्य कवियों की संक्षिप्त चर्चा निम्नवत है।

रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवियों का परिचय :--

तुलसीदास

कवि परिचय

जन्म:सन् 1540 में उत्तर प्रदेश के बांदा जिले के राजापुर गॉव में। कुछ विद्वान इनका जन्म स्थान सोंरों भी मानते हैं।

माता-पिता: हुलसी और आत्माराम दूबे, अशुभ नक्ष्त्र में जन्म लेने के कारण माता-पिता ने इनका त्याग कर दिया। जिसके कारण इनका बचपन काफी कष्ट में बीता। बाबा नरसिंह दास ने उनका पालन-पोषण किया।

पत्नी: रत्नावली, पत्नी की बातों से प्रभावित होकर उन्होंने गृहत्याग किया और तीर्थ यात्रा करते हुए अन्य स्थानों पर घूमते रहे बाद में रामचरित मानस आदि ग्रन्थों की रचना की।

मृत्यु: इनका देहान्त सन् 1623 में हुआ।

प्रमुख रचनाएं: वैसे तो तुलसीदास ने 30-35 ग्रंथों की रचना की लेकिन 12 ग्रंथ उपलब्ध होते हैं, उनकी सूची इस प्रकार है--

1.रामलला नहछू- संवत 1611 **2.** रामाज्ञा प्रश्न- संवत 1611 **3**. वैराग्य संदीपनी- संवत 1629 **4.** रामचरित मानस- संवत 1631 **5.** पार्वती मंगल- संवत 1642 **6.** जानकी मंगल- संवत 1643 **7.** गीतावली- संवत 1655 **8.** कृष्ण गीतावली- संवत 1660 **9.** विनय पत्रिका- संवत 1660 **10.** बरवै रामायण-1669 **11.** दोहावली- संवत 1676 **12.** कवितावली- संवत 1676-1680

केशवदास

कवि परिचय: रामचन्द्रिका में उन्होंने अपना परिचय खुद दिया है। जाति के सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनका जन्म टेहरी में संवत 1612 के आसपास हुआ माना जाता है।

पितामह: कृष्ण दत्त

पिता: काशीनाथ, ओरछा नरेश इन्द्रजीत सिंह के आश्रय में रहा करते थे। संस्कृत के पंडित थे।

मृत्यु: इनकी मृत्यु संवत 1674 में हुई।

प्रमुख रचनाएं: इन्होंने कुल 16 ग्रंथों की रचनाएं की पर केवल 8 ग्रंथ ही उपलब्ध होते हैं। **1.** रामचन्द्रिका **2.** विज्ञानगीता **3.** वीरसिंह देवचरित्र **4.** जहाँगीर जसचन्द्रिका **5.** रतन बावनी **6.** रसिक प्रिया **7.** कविप्रिया और **8.** नख-शिख

स्वामी अग्रदास

कवि परिचय

जन्म: संवत 1622 जयपुर में। भक्तमाल के रचयिता नाभादास इनके शिष्य थे। अग्रदास यद्यपि अष्छछाप के कृष्णदासजी के शिष्य थे, फिर भी राम उपासक थे।

प्रमुख रचनाएं: 1. रामभजन मंजरी **2.** कुण्डलिया **3.** हितोपदेश भाषा **4.** उपासना बावनी **5.** ध्यान मंजरी **6.** पद या रामचरित के पद **7.** अग्रसार भक्त माला

नाभादास

कवि परिचय: असली नाम: नारायण दास

जाति: डोम अथवा मेंदार

जन्म: ई 1600 (संवत 1657)

गुरू: स्वामी अग्रदास

प्रमुख रचना- भक्तमाला (316 छप्पायों में से इन्होंने 200 भक्त कवियों का परिचय दिया है।) संवत 1769 में प्रियदास ने भक्त माला की टीका की।

हृदयदास:

कवि परिचय: अज्ञात

प्रमुख रचना: इन्होंने संस्कृत 'हनुमन्नाटक नामक पद्यात्मक हिन्दी नाटक की रचना की।

रामभक्ति शाख की प्रमुख विशेषताएं

1. दास्य भाव भक्ति

2. मर्यादा की प्रतिष्ठा
3. आदर्श की स्थापना
4. लोकमंगल की भावना
5. काव्यरूपों की विविधता
6. भाषा प्रयोग में विविधता
7. सभी रसों का समन्वय
8. विविध छन्दों का प्रयोग
9. प्रकृति-चित्रण
10. जन-श्रृद्धा का आधार
11. समन्वय भावना
12. विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के साथ भक्ति पर बल

रीतिकाल

रीति का सामान्य अर्थः रीति का सामान्य अर्थ है- प्रणाली, पद्धति, मार्ग, पथ, शैली आदि। हिन्दी में रीति शब्द का प्रयोग विशेष अर्थ में हुआ है। इस काल में रीति का अर्थ लक्षण ग्रंथों को ध्यान में रखकर लिखे गये काव्यों से लगाया गया है इस प्रकार रीति काव्य वह काव्य है जो लक्षण को ध्यान में रखकर लिखा गया हो। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सम्वत 1700 से 1900 तक के समय रीतिकाल नाम दिया है। उनकी दृष्टि में केशवदास ने सर्वप्रथम रीतिग्रन्थ की रचना की है। लेकिन केशवदास के बाद 50 वर्षो तक किसी ने भी इस प्रकार के ग्रंथ की रचना नहीं की। बाद में इस परम्परा के ग्रंथ की रचना करने वाले आचार्य चिन्तामणि त्रिपाठी का नाम आता है। कुछ लोगों का मानना है कि चिन्तामणि से रीति काल की शुरुआत होती है, लेकिन रीति रचना के प्रर्वतक के रूप में केशवदास होने की वजह से उन्ही से रीति काल की शुरूआत मानी जाती है।

हिन्दी में रीतिकव्य की विकास परम्पराः

1. संस्कृत साहित्य में इसकी विशाल परम्परा है।
2. कवियों को राज्याश्रय प्राप्त
3. कवि और काव्य के स्वतन्त्र रूप की प्रतिष्ठा
4. तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितयॉ

रीति काव्य के विकास के सन्दर्भ में तथा इस परम्परा को आगे बढ़ाने में जिन कवियों का विशेष योगदान रहा है उनका परिचय इस प्रकार है--

रीतिकालीन कवियों का परिचय

घनानंद

कवि परिचय

जन्म: ई. 1760 में भटनागर कायस्थ परिवार में हुआ। दिल्ली के मुग़ल बादशाह मुहम्मद शाह के मीर मुंशी थे। उच्चकोटि के गायक थे। वे सुजान नामक एक वेश्या से प्यार करते थे, एक बार जब राजा को पता चला तो उन्होंने उन्हें गाने के लिए कहा पर वे राज दरबार की गरिमा का ध्यान न रखते हुए उन्होंने सुजान की तरफ मुँह और राजा की तरफ पीठ करके गाना गाया जिससे उन्हें देश निकाला मिला। सुजान उनके साथ न आई। सुजान की बेवफाई वह न सह सके इसलिए उन्होंने अपने ग्रंथ में श्रीकृष्ण की जगह पर सुजान का नाम लिया है। वे निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। नादिरशाह ने जब मुगल सल्तनत को हराया तब लोगों ने उनके सिपाहियों को बताया की बादशाह का मीर मुंशी वृन्दावन में रहता है। सिपाहियों ने घनानंद के पास से धन मांगा तो घनानंद ने उनकी तरफ रज-रज-रज कहकर उनकी तरफ धूल फेंक दी। इस पर घनांनद के हाथ सिपाहियों ने काट डाले।

प्रमुख रचनाएं: 1. सुजान ग्रंथावली 2. रस केलिवल्ली 3. कोकसार 4. कृपाकांड 5. विरहलीला, इनके द्वारा रचित 150 से 400 तक सवैया भी फुटकर मिलते है।

बिहारी

कवि परिचय

जन्म: संवत 1603 ई. ग्वालियर राज्य के बसुआ गोविन्दपुर गॉव में हुआ। इनकी बाल्यावस्था बुन्देलखण्ड में और तरुणावस्था अपनी ससुराल मथुरा में बीती। वे जयपुर नरेश महाराजा जयसिंह के दरबारी कवि थे।

मृत्यु: संवत 1720, ई. 1633 में।

प्रमुख रचना: बिहारी सतसई, जिसमें लगभग 700 से भी अधिक दोहे हैं। इसी कृति ने उन्हें हिन्दी काव्य साहित्य में अमर कर दिया। इसमें संयोग तथा वियोग वर्णन दोनों हैं।

भूषण

कवि परिचय: कवि भूषण ने घोर श्रृंगारिकता और विलासिता के युग में सोई हुई भारतीय जनता के मानस को वीर रस के माध्यम से जगाने का प्रयत्न किया। इनका काव्य राष्ट्रीय भावनाओं पर आधारित है।

जन्म: संवत 1670 में (ई. 1613) कानपुर के तिकोवापुर ग्राम में।

पिता: पंडित रत्नाकर त्रिपाठी

भाई: चिन्तामणि और मतिराम , चित्रकूट के राजा राजारुद्र ने इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर इन्हें 'भूषण' नाम से सम्मानित किया। बाद के अन्तिम दिनों में शिवाजी के दरबार में रहे। इनके दूसरे आश्रयदाता छत्रसाल थे। भूषण को ही हिन्दी साहित्य का सर्वप्रथम राष्ट्रकवि माना जाता है।

मृत्यु: संवत 1772 (ई. 1715) के आसपास

प्रमुख रचनाएं: इन्होंने तीन ग्रंथों की रचना की थी-- शिवभूषण, शिवाबावनी और छत्रशाल दशक जिसमें शिवाजी और छत्रशाल के शौर्य और पराक्रम का वर्णन मिलता है।

आधुनिक काल

" औरगंजेब की मृत्यु के बाद से भारत में आधुनिकता का उन्मेष दिखाई देता है। प्राचीन परिपाटी के पटपरिवर्तन का नाम ही आधुनिकता है। टेनिसन के शब्दों में कहें तो 'पुरानी व्यवस्था बदलकर अपना स्थान नई व्यवस्था को देती है, यही आधुनिकता का सूत्रपात है। औरगंजेब के जीवन तक मुगल साम्राज्य समस्त भारत को केन्द्रीय सूत्र में बाँधे हुए था। उसके मरने पर केंद्रीय सूत्र शिथिल ही नहीं विच्छिन्न भी हो गया और देश विदेश के व्यापारियों के सामाजिक रंगमंच पर धीरे-धीरे प्रवेश को आधुनिक युग की नेपथ्य सूचना कहना चाहिए।'' 42

मुगल साम्रज्य के पतन के बाद ऐसा प्रतीत होने लगा कि शक्तिशाली मराठे मुगलों का स्थान ग्रहण करने लगे, सन् 1761 में पानीपत में अहमद शाह के साथ होने वाले युद्ध में उनका हौसला टूट गया, साथ ही साथ उनके पैर भी उखड़ गये। अब राजाओं ने परस्पर युद्ध और कलह होने लगा। किसी में भी केन्द्रिय शासन संभालने की क्षमता नहीं रही। 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों को खदेड़ दिया। उसके बाद धीरे-धीरे सन 1756 के प्लासी का युद्ध तथा सन् 1764 के बक्सर के युद्धों में कंपनी ने विजय प्राप्त करके भारतीय राजाओं के परस्पर कलह और युद्ध का फायदा उठाकर केन्द्रिय शासन प्राप्त कर लिया। यानी कि ' दो बिल्लियों की लड़ाई में बन्दर बाजी

मार ले गया।' परिणाम स्वरूप देशी जन मानस पर पाश्चात्य भाषा साहित्य एवं विचारधारा का भी प्रभाव बढ़ने लगा। " अंग्रेजी पढ़ना और ब्रिटिश सरकार की सेवा करना ही लोगों का धर्म और कर्म हो गया था। ब्रिटिश सत्ता ने भारतीयों की भावनाओं को इस प्रकार कुंठित कर रखा था कि वे अपने देश के लिए अपनत्व तथा गुलामी पतन एवं अपमान का अनुभव तक न कर सकते थे। उनकी विचारधारा ही इस प्रकार से बना दी गई थी कि हिन्दुओं को मुसलानों के अत्याचारों से छुटकारा दिलाकर त्राण देने वाली जाति अंग्रेज ही है। दूसरी ओर अंगेजों ने मुसलमानों से ही राज्य सत्ताा प्राप्त की थी, इसलिए वह कुछ सीमा तक उनका भी आदर सत्कार करते थे। इस प्रकार अंग्रेज हिन्दू मुसलमान दोनों की भावनाओं पर अपनी कूटनीति का परदा उठाकर उन्हें संतुष्ट कर रहे थे। स्वार्थसिद्धि के लिए दी गई शिक्षा, व्यापार वृद्धि के साधन, फ्रांस की क्रांति एवं जापान की विजय से भारतीयों के मन का आवरण शनै:-शनै: हटने लगा और उनमें देश के प्रति अनुराग और जागरण की भावना पैदा होने लगी।'' 43

डलहौजी की खालसा नीति रोबर्ड क्लाईव की षडयंत्र नीति वारेन हेस्टिंग्स की कूटनीति ने पूरे भारत को अंग्रेजों के हस्तक्षेप तो कर ही दिया लेकिन भारतीयों को राजनीतिक आर्थिक एवं धार्मिक रूप से तोड़ डाला। कंपनी की शासकीय नीति ने देश के हिंदुओं और मुसलमान राजाओं तथा नबाबों में असंतोष की लहर बहा दी। डलहौजी की नीति से भारतीयों में असंतोष उत्पन्न हुआ था। जिसे अंग्रेज सरकार शांत नहीं कर पाई थी और यह असंतोष विद्रोह के रूप में सामन आया, जिसे इतिहासकार सन् 1851 का सिपाही विद्रोह कहते हैं। सिपाही विद्रोह कहने के कुछ कारण थे जो इस प्रकार हैं--

1. कैनिंग ने यह आज्ञा प्रचारित की थी कि प्रत्येक सैनिक को जहॉ कहॉ जाए वहॉ जाना होगा। इसका अर्थ था समुद्र पार करना होगा, इसे हिन्दू धर्म पर आघात समझा।
2. जो नई रायफल सैनिको को दी गई उनके कारतूसों को दॉत से काटना पड़ता था और उनमें जो चर्बी लगी थी वह गाय और सूअर की होती थी, जिसे मुसलमान तथा हिन्दू सैनिकों ने आपत्ति जनक समझा।
3. यह मनोवैज्ञानिक कारण था कि चीन, क्रीमिया और अफगानिस्तान के युद्धों में अंग्रेज और भारतीय सैनिक साथ-साथ लड़े थे। उनमें भारतीयों की वीरता सिद्ध हो चुकी थी और अंग्रेज कमजोर साबित हुए थे। अत: भारतीय सैनिकों को ऐसा आभास होने लगा था कि वे अंग्रेजों को कभी भी किसी युद्ध में हराकर भगा सकते हैं।

मंगलपांडे की मौत के साथ 1857 के युद्ध की शुरुआत हो गई और इस युद्ध को इतिहासकार स्वाधीनता का प्रथम युद्ध मानते हैं। 1857 के विप्लव से अंग्रेज भयभीत हो गये। ब्रिटिश सरकार ने राज्य सत्ता की ईस्ट इण्डिया कंपनी के हाथों से लेकर स्वयं अपने हाथों में संभाल ली। महारानी विक्टोरिया ने अपनी अनेक सांत्वनामयी घोषणाओं से भारतीय जनता को कुछ समय के लिए शांत किया। लेकिन कुछ समय के बाद अंग्रेजों का अत्याचार फिर से शुरू हो गया। " लार्ड कर्जन की बंग-भंग नीति से बंगाल की जनता में व्यापक असन्तोष फैल गयां कर्जन बंगाल को पूर्व और पश्चिम बंगाल में विभाजित करना चाहता था, उसने पूर्व बंगाल में दौरा कर मुसलमानों को सांप्रदायिक आग भड़काकर बहकाना चाहा पर बंगभंग का खुला समर्थन उसे उनसे भी नहीं मिला। बंगाल में बंग-भंग के विरुद्ध आंदोलन के परिणाम स्वरूप विदेशी वस्तुओं विशेषकर वस्त्रों के बहिष्कार के आन्दोलन ने विश्वव्यापी आन्दोलन धारण कर लिया। कर्जन की नीति ने सन् 1900 में लिखाा था कि कांग्रेस का पतन हो रहा है और इंग्लैण्ड लौटने के पूर्व में उसका अंतिम संस्कार देखना चाहूँगा पर इतिहास ने इसके पूर्व विपरीत ही कहानी लिखी। कांग्रेस उत्तरोत्तर शक्तिशाली बनती गई और कर्जन के उत्तराधिकारियों ने उसके द्वारा ब्रिटिश शासन का अंतिम संस्कार देखा।'' 44

भारतीयों को राजनीतिक क्षेत्र में पराजय स्वीकार करनी पड़ी पर उन्होंने सांस्कृतिक क्षेत्र में पराजय स्वीकार नहीं की। अंग्रेजी राज का प्रभाव भारतीय समाज पर हुआ, पर वह उन सभी प्रभावों से भिन्न था जो अब तक हुआ था। समाज में पाश्चात्य संस्कृति का फैलाव होने लगा, लेकिन भारतीय जनता ने भारतीय संस्कृति को बचा कर रखा। इस समय भारत में शिक्षण का फैलाव होने लगा। यह वर्ग हिन्दू धर्म के कुरिवाज जैसे सती प्रथा, बाल विवाह, बालकी को दूध पीती करना, छुआछूत आदि को नहीं मानता था। धार्मिक सहिष्णुता समाज से ही होती है। इसलिए समाज का यह शिक्षित वर्ग को तर्कवाद, विज्ञानवाद, तथा मानववाद से बहुत प्रभावित हुआ और उन्होंने धर्म को सुधारने का प्रयास किया और अंध विश्वास, मूर्तिपूजा तथा तीर्थ यात्रा इत्यादि को तर्क की तराजू में तौलकर धर्म में सुधार किया। इसकी शुरुआत सबसे पहले राजाराम मोहनराय ने सती प्रथा नाबूद करके की। यहीं से नवजागरण की शुरुआत मानी जाती है। उस समय सामाजिक-धार्मिक क्षेत्र में कई सुधार आन्दोलन हुए। इनमें से मुख्य हैं वे इस प्रकार हैं---

<u>**सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र के सुधार आंदोलन**</u>

समाज	**संस्थापक का नाम**	**स्थापना वर्ष**
ब्रह्म समाज	राजाराममोहनराय	20अगस्त 1828

वेद समाज	राधाकान्त अग्निहोत्री	1840
प्रार्थना समाज	डॉ.आत्माराम पांडुरंग आठवले	1867
आर्य समाज	स्वामी दयानंद सरस्वती	10 अप्रैल, 1875
रामकृष्ण मिशन	स्वामी विवेकानन्द	9 दिसम्बर, 1875
थियोसोफिकल सोसायटी	डा. एनी बेसेन्ट	1879-1882

अन्य हिन्दू सुधारक एवं समाजसेवक आंदोलन

1. मुस्लिम धर्म सुधारक आन्दोलन
2. सिक्ख सुधार आन्दोलन
3. भारत में मध्यमवर्गीय लोगों का उदय
4. भारतीय संस्कृति का पुनरुत्थान
5. पारसी सुधार आन्दोलन
6. स्त्री उद्धारक आंदोलन
7. जाति उद्धारक आन्दोलन

इन आंदोलनों के कारण हिन्दू धर्म के कई अंध विश्वास एवं कुरिवाजों को नाबूद किया गया। यह सुधार भी पाश्चात्य शिक्षण की वजह से आया था। अर्थात हम यह कह सकते हैं कि 'हर सिक्के के दो पहलू होते हैं'। अगर अंगेजों के व्यवहार अमानवीय थे तो उसी के कारण तथा उनकी संस्कृति की वजह से भारत में धार्मिक सुधार हो पायी। साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज में जो कुछ घटित होता है उसी का चित्रण साहित्यकार करता है। यह परिवर्तन प्रत्येक काल में दिखाई देता है। चाहे वह काल आदिकाल, मध्यकाल या आधुनिक काल ही क्यों न हो ? आधुनिक काल में धार्मिक उथल-पुथल का प्रभाव देखने को मिलता है। 1857 के विप्लव के बाद लोगों में नवजागृति उत्पन्न हुई। यही नवजागृति हमें साहित्य में देखने को मिलता है। हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल का प्रारम्भ भारतेन्दु जी ने किया। इसलिए इस काल को भारतेन्दु युग के नाम से जाना जाता है। आलोचको तथा समीक्षको के मतानुसार इस समय की साहित्यक गतिविधियाँ भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की प्रवृत्तियों को केन्द्र में रखकर नियोजित हुई। इस काल का समय 1850 से 1900 तक का माना जाता है। यह काल नवजागरण का काल था। इसी समय पूर्वी और पश्चिमी विचारधाराओं का संघर्ष आरंभ हो गया था। कुछ लोग पश्चिमी प्रवाह में बह गये थे और कुछ रूढ़िवादी बने रहे , इस तरह दोनों विचारधाराओं के साथ-सथ नवीन वैज्ञानिक भावधारा का साहित्य में प्रवेश इसी समन्वयात्मक दृष्टिकोण का परिणाम

था। इसी काल में राष्ट्रीयता की भावना भी पनपी, विचार-स्वतंत्रता भी अंकुरित हुई। परिणाम स्वरूप इस काल के अन्तर्गत नाना प्रकार के साहित्य का उद्‌भव और विकास हुआ जो इस प्रकार हैं---

आधुनिक काल की विभिन्न साहित्यक विधाएं

1. निबंध
2. उपन्यास
3. नाटक
4. कहानी
5. समालोचना
6. जीवनी
7. आलोचना
8. पत्रिकाएं
9. रेखाचित्र
10. संस्मरण
11. यात्रा-साहित्य
12. धर्मकथा
13. आत्मकथा
14. रिपोतार्ज
15. एकांकी
16. इण्टरव्यू
17. आख्यान
18. भाषानुवाद
19. काव्य और महाकाव्य
20. गद्य काव्य
21. डायरी

इन सभी विधाओं की शुरुआत भारतेन्दु काल यानी कि 19वीं शताब्दी से मानी जाती है। भारतेन्दु ने खड़ी बोली की शुरुआत की थी और उसी समय से इन सभी विधाओं का प्रारंभ भी हुआ। इस प्रकार नवजागरण के प्रारंभ में पूर्ववर्ती साहित्य की अहम् भूमिका रही है।

3. लोकजागरण एवं नवजागरण में अन्तर

लोकजागरण

'लोकजागरण' के बारे में जानने के लिए हमें सबसे पहले उस समय की राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति को जानना पड़ेगा। 'लोकजागरण' जिसका दूसरा नाम भक्तिकाल है उस भक्ति आन्दोलन' की शुरुआत किस तरह हुई इत्यादि को हम उस समय की स्थिति के माध्यम से जान सकते हैं।

लोकजागरण और नवजागरण ये दोनों अलग-अलग चीजें हैं। इन दोनों का समयकाल भी भिन्न है। लोकजागरण का समय 14 वीं सदी है तो नवजागरण का 15 वीं सदी। राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से भी ये दोनों में विभिन्नता देखने को मिलती है। दोनों के अर्थ में भी हमें विभिन्नता देखने को मिलती है जैसे लोकजागरण अर्थात् लोगों का जागृत होना, नवजागरण अर्थात् जागे हुए लोगों को पुन: जागृत करना। यह तो इसका सामान्य अन्तर है। लेकिन लोकजागरण और नवजागरण की विभिन्नता को सही रूप में जानने के लिए हमे उस समय की परिस्थितियों को जानना अत्यंत आवश्यक है। जो इस प्रकार है--

राजनैतिक

" मुस्लिम आक्रमणों के समय भारत एक समृद्ध देश था। जिसकी आम् जनता निर्धन थी एवं सुरक्षा-व्यवस्था और भी अधिक कमजोर थी। इसकी विस्मयकारी समृद्धि, कमजोर, राजनीतिक संरचना और अस्मीभूत समाज ने कुरक्षित धनराशियां लूटने के लिए मुस्लिम आक्रमणकारियों को आमंत्रित किया। कहने की आवश्यकता नही कि इस्लाम की शक्तियों के विरुद्ध घोर संघर्ष में इसके जीवित रहने की बहुत कम संभावना रह गई थी। " 45

" पैगम्बर मुहम्मद (570-632 ई.) की मृत्यु के पश्चात एक शताब्दी में अरबों ने विस्तृत प्रदेशों को जीत लिया और 711 ई. में इस्लाम का साम्राज्य चीन की सीमा से लेकर अटलांटिक समुद्रतट तक विस्तृत हो गया। सातवीं शताब्दी के मध्य में अरबों ने उत्तर भारत में प्रवेश करने का प्रयास किया परन्तु वे सर्वथा निष्फल रहे, फिर भी 711-713 ई. में बसरा के अरब प्रान्तपति अल-हयाज के भतीजे मुहम्मद बिन कासिम ने अरबों के लिए सिन्धु और मुल्तान जीत लिया।" 46 ये उनकी पहली जीत थी।

यही वह मार्ग था जो उन्हें भारत तक ला सकता था। भारत को जीतने के लिए उन्हें सिन्धु नदी को हासिल करना अत्यधिक आवश्यक था। अरबों ने हिन्दुओं से दर्शन, ज्योतिष, गणित, चिकित्सा-विज्ञान,, रसायन शास्त्र और शासनकला आदि सीखी और उन्हें वे लोग पाश्चात्य देशों में ले गये।

" मुस्लिम शक्तियों के पूर्व निरन्तर आक्रमण होने पर भी भारत में मुस्लिम साम्राज्य की नींव शहाबुद्दीन गोरी (1175-1206ई.) ने डाली थी। 1173 में गजनी ने अपनी सत्ता स्थापित करने के बाद शहाबुद्दीन ने भारत की ओर ध्यान दिया और दस वर्ष में ही उसने मुसलमान, सिन्ध और लाहौर को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। इसके बाद हमलावर गोरी ने राजपूत शासकों का सामना किया और 1192 में तराइन के द्वितीय युद्ध में राजपूतों के नेता, दिल्ली के पृथ्वीराज चौहान को पराजित कर दिया। इसके बाद अजमेर, कन्नौज और बनारस विजय किए गये। शहाबुद्दीन के भारत लौट आने के बाद उसके सेनाध्यक्षों कुतुबद्दीन ऐबक और मुहम्मद बख्त्यार खिलजी ने विजय कार्य जारी रखा और ग्वालियर, कालिंजर, बंगाल और बिहार जीत लिए। तीस वर्ष की अवधि में सिन्ध और ब्रह्मपुत्र के मध्य का समस्त प्रदेश स्थायी रूप से मुसलमानों के अधिकारों में आ गया। अब भारत में मुस्लिम शासन की नींव स्थायी रूप से डाल दी गई थी।'' 47

मुस्लिम राजाओं ने अपने सैनिक बल के आधार पर देश के अनेक राज्यों को जीत लिया। लेकिन वह अपने शासनकाल दरम्यान अपनी सत्ता और राज्य के कुलीनतन्त्र को सशक्त करने में ही प्रधानतया आतुर थे। नियमित अनुकूल और स्थिर नीति की अपेक्षा उन्होंने अपने स्वार्थ के हित की नीति का ही अनुकरण किया और कालान्तर में वे अधिक महत्वाकांक्षी और दुर्दान्त बन गये थे। एक के बाद एक विभिन्न मुस्लिम राजवंश जैसे गुलाम वंश (1206-1260ई.) खिलजी वंश (1290-1320ई.) तुगलक राजवंश (1320-1412) सैयद राजवंश (1414-1451ई.) लोदी वंश (1451-1526 ई.) आदि अनेक राजवंश ने युद्धों के माध्यम से दिल्ली सल्तनत को अपने अधीन बनाया तथा अपने सानुकूलता के हिसाब से नियमों की रचना की । इन सभी युद्ध एवं विभिन्न सुल्तानों के शासन की वजह से भारत की राजनैतिक स्थिति चरमरा गई, जिसका असर हमारी आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति पर पड़ना स्वाभाविक था।

आर्थिक स्थिति

" भारत का आन्तरिक व्यापार विस्तृत और व्यापक था परन्तु कभी-कभी वह राज्य के एकाधिकार या कठोर शासकीय नियन्त्रण के कारण अवरुद्ध होकर सीमित हो जाता था, निरन्तर युद्धों

और आन्तरिक विद्राहों के कारण भी व्यापार को ठेस पहुँची थी। वाह्य व्यापार की दृष्टि से उसका यूरोप के दूरस्थ प्रदेश तथा मलाया द्वीपसमूह, चीन एवं प्रशान्त महासागर के अन्य देशों से व्यापारिक सम्बन्ध था। भारत का अपने थल द्वारा मध्य एशिया, अफगानिस्तान, ईरान, तिब्बत और भूटान से सम्पर्क और संघर्ष था। भोग-विलास की वस्तुएं अश्व, और खच्चर आयात के प्रमुख साधन थे और निर्यात में प्रधान वस्तुएं कृषि की विविध उपज और वस्त्र थे। फारस की खाड़ी के चतुर्दिक कतिपय देश को खाद्य-सामग्री के लिए सम्पूर्णतया भारत पर ही आश्रित थे।'' 48 लेकिन राजनैतिक परिस्थिति के बदलते ही भारत की आर्थिक स्थिति पर फर्क न पड़े वह संभव न था। मुस्लिम नेता अपने स्वार्थ एवं स्वयं की राजनैतिक और आर्थिक आवश्यकताओं के हेतु दिल्ली के सुल्तानों और छोटे प्रान्तीय शासकों ने वाणिज्य-व्यापार और उद्योगों को प्रोत्साहित किया।

धार्मिक कारण

" मुसलमान ही प्रथम ऐसे आक्रान्ता थे जो हिन्दू समाज का अंग न बन सका, उनका इस्लाम धर्म दृढ़ ऐकेश्वरवादी धर्म होने के कारण बहुदेववाद से मतैक्य न कर सका। वह देवताओं का बाहुल्य स्वीकार न कर सका। इसके अतिरिक्त दूसरे धर्म को निगलकर उसे ही अपने रक्त, मांस व मज्जा से मिश्रित कर अपना अंग बना लेने की हिन्दू धर्म में जो प्राचीन विलक्षण शक्ति थी वह मुसलमानों के आगमनकाल तक प्राय: क्षीण हो गई। जिन लोगों के पूर्वज विश्वामित्रों को अपना अंग बना लेते थे, वे उनका स्पर्श मात्र महापाप समझने लगे। अतएव हिन्दू और मुसलमान एक ही देश में रहने पर भी परस्पर घनिष्टता से घुल-मिल न सके।'' 49

"इसके अतिरिक्त भारत के सभी आक्रमणकारियों में मुसलमान ही केवल ऐसे थे जिन्होंने भारत के विरुद्ध धर्म-युद्ध घोषित किया। उनमें अपने धर्म प्रसार के लिए लगन और उत्साह था। ये धार्मिक उत्साह से परिपूर्ण थे और दूसरे लोगों को अपने धर्म दीक्षा देने के निर्दिष्ट विचार से आए थे। दूसरों का धर्म परिवर्तन करने की उनमें दृढ़ भावना थी, न कि दूसरों के धर्म में विलुप्त हो जाने की। उनमें अत्यधिक धार्मिक चेतना थी। अंत में 1200 ई. से 1580 ई. तक भारत में मुस्लिम राज्य और समाज ने मूलभूत सैनिक और घुमक्कड़कता की विशेषताओं को बनाए रखा। शासन करने वाली जाति देश में रहने वाली थी, परन्तु वे देश के नहीं थे। उन्होंने सदैव अपने पृथक एकात्म्य सुरक्षित बनाये रखा और इसका मूल्य भारत को बीसवीं सदी में देश का विभाजन कर चुकाना पड़ा।''50

मुस्लिम सुल्तान जैसे मुहम्मद गजनी ने तो 17 बार भारत पर आक्रमण किया और गुजरात के सोमनाथ मन्दिर में से कई कीमती चींजे लूटी और धार्मिक किताबों को नष्ट कर दिया। इसी तरह कई

मुसलमान सुल्तानों ने हिन्दू मन्दिरों को न केवल लूटा बल्कि कई धार्मिक पुस्तको ' को भी नष्ट कर दिया।

सामाजिक कारण

इस युग मे मुसलमानों पर राज्य की विशेष कृपा थी और हिन्दुओं को अनेक प्रतिबन्ध और अयोग्यताएं सहन करनी पड़ी थी। राज्य के अनेक उच्च पद मुसलमानों के लिए सुरक्षित रखे जाते थे। मुसलमान का रहन-सहन भारतीयों के लिए भिन्न था। वे भोगविलासी तो थे, साथ ही साथ साहित्य कला के प्रमी थे। मुस्लिम विजेताओं ने हिन्दू रानियों और राजकुमारियों से विवाह किया। इन हिन्दू स्त्रियों ने अपने नवीन गृहों में हिन्दू प्रथाओं को प्रस्तावित किया जिससे मुसलमान प्रभावित हुए। मुसलमान के समाज पर हिन्दू समाज का प्रभाव पड़ा उसी तरह भारतीय समाज का मुस्लिम समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। मुस्लिम समाज की वजह से " हिन्दुओं ने शिशु हत्या, की प्रथा विस्तृत रूप से प्रचलित हो गई और हिन्दू समाज में पर्दा प्रथा भी विस्तृत रूप से प्रचलित हो गई जिससे स्त्रियॉ अपने क्षेत्र में ही एकान्तवास में रहती थी। वे पर्दो में ढकी पालकियों में बाहर जाती थी मुस्लिम स्त्रियों की स्वतन्त्रता भी कम कर दी गई। नगर के बाहर संतों की समाधियों के दर्शनार्थ भी उन्हें जाने की अनुमति नहीं थी। इस आदेश का उल्लंघन करने वाली नारियों के विरुद्ध कठोर दण्ड निर्धारित कर फिरोज ने अपनी असहिष्णुता प्रकट की थी। मुसलमानों द्वारा कन्याओं का बलात अपहरण होने से बालविवाह उस युग की सर्वमान्य प्रथा हो गई थी। महिलाओं की दशा पहले की अपेक्षा अधिक निम्न स्तर पर आ गई थी। स्त्रियों को अपने स्वामियों अथवा अन्य पुरुष सम्बन्धी पर आश्रित होना समाज की प्रमुख विशिष्टता थी। उनसे दाम्पत्य जीवन में पूर्ण पतिभक्ति बनाए रखने की आशा की जाती थी। यद्यपि स्त्रियों का सम्मान होता था। तथापि कन्या का जन्म एक अशुभ घटना मानी जाती है। अमीर खुसरो ने अपनी कन्या के जन्म पर स्वयं खेद प्रकट किया था। हिन्दू स्त्रियों में मुसलमानों से अपने धर्म और सतीत्व की रक्षा करने हेतु सती प्रथा देशव्यापी हो गई।'' 51 इसके उपरान्त मुसलमानों के आने के कारण ही भारतीय सामाजिक जीवन में दासता की अवांछनीय प्रथा घर कर गयी। राजपूत राजघरानों में आज भी स्त्री दासियॉ दहेज में दी जाती हैं। मुस्लिम प्रभाव की व्यापकता हिन्दुओं के पारिवारिक जीवन के अंगों, रीति-रिवाजों, संगीत-नृत्य, वेश-भूषा, भोजन बनाने की प्रणाली, त्योहारों, मेलों, समारेहों, व मराठा, राजपूत तथा सिक्ख राजाओं की दरबारी संस्थाओं में विशालता व सुचारुता से व्यक्त है।

स्थापत्य कला

मुस्लिम जनता के आने से जिस तरह से भारतीय संस्कृति का पतन होने लगा उसी तरह से उनके आने के बाद कई ऐसे परिवर्तन आये जो भारतीय संस्कृति के लिए एक अनमोल भेंट है।" मुस्लिम वास्तुकला धर्म एवं उपासना की कतिपय व्यावहारिक आवश्यकताओं और प्रदेश की प्राकृतिक स्थिति से अधिक प्रभावित हुई थी। फलत: मुस्लिम कला की विशेषताएं, विशालभवन, विराट गोल गुम्बद, ऊँची मिनारें खुले आंगन तथा साफ और सुथरी दीवारें थी। इसके विपरीत भारत विशाल पर्वतों, उत्तंग श्रृंगों विस्तृत मैदानों, दुर्भेद जंगलों, विभिन्न ऋतुओं, सुन्दर वनस्पतियों हरे भरे खेतों और घने नगरों तथा ग्रामों का देश रहा है। ऐसी भौगोलिक स्थिति के फलस्वरूप हिन्दू कला में विवशता, स्थूलता, विस्तार विविधता और सम्पन्नता है। जिस प्रकार भारतीय भूमि विविध मनोरम पुष्प, पत्ती लता आदि से आच्छादित है, उसी प्रकार हिन्दू मन्दिरों और भवनों में ऐसा कोई स्थान नहीं था जो कला के अलंकरणों से वंचित हो। इस्लाम के आगमन से उन दोनों प्रकार की विभिन्न कलाओं का सम्मिश्रण और समन्वय हुआ।'' 52

विभिन्न भाषाओं का जन्म

जिस तरह से स्थापत्य कला का विकास हुआ उसी प्रकार विभिन्न भाषाओं का जन्म हुआ। जैसे फारसी, उर्दू, अपभ्रंश आदि। संस्कृत का मूलरूप लुप्त हो गया और साहित्यक विधायें अपभ्रंश आदि में लिखी जाने लगी। इस विधा के प्रमुख कवि के रूप में अमीर खुसरो का नाम लिया जाता है।

" देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उनके मंदिर गिराये जाते थे, देवमूर्तियॉ तोड़ी जाती थी और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी न कर पाते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे। आगे चलकर मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतन्त्र राज्य भी न रह गये । इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिन्दू जन समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी सी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की भक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था ?'' 53

जिस समय आदमी चारों ओर से निराश हो जाता है, तब वह भगवान की शरण में ही जाता है। इसी प्रकार-- "मुसलमानों के बढ़ते हुए आतंक ने हिन्दुओं के हृदय में भय की भावना उत्पन्न कर दी थी। यदि मुसलमान लूटमार कर ही चले जाते तब भी हिन्दुओं की शान्ति में क्षणिक बाधा ही पड़ती। किन्तु जब मुसलमानों ने भारत को अपनी सम्पत्ति मानकर उस पर शासन करना प्रारम्भ

किया तब हिन्दुओं के सामने अपने अस्तित्व का प्रश्न आ गया। मुसलमान जब अपनी सत्ता के साथ अपने धर्म का प्रचार करने लगे तो परिस्थिति और भी विकट हो गई। हिन्दुओं में मुसलमानों से लोहा लेने की शकित नही थी। वे मुसलमानों को न तो पराजित कर सकते थे और न धर्म की अवहेलना ही कर सकते थे। इस असहाय अवस्था में उनके पास ईश्वर से प्रार्थना करने के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नही था। वे ईश्वरीय शक्ति और अनुकम्पा पर विश्वास रखने लगे। कभी कभी वीरत्व की चिनगारी भी नही दीख पड़ती थी तो वह दूसरे ही क्षण बुझ जाती थी या बुझा दी जाती थी। इस प्रकार दुष्टों को दण्ड देने का कार्य ईश्वर पर ही छोड़ दिया गया और वे सांसारिक वस्तु स्थिति से पारलौकिक या आध्यात्मिक वातावरण में ही विहार करने लगे। इस समय हिन्दू राजा और प्रजा दोनों के विचार इसी प्रकार भक्तिमय हो गये और वीरगाथा काल की वीर रसमयी प्रकृति धीरे-धीरे शांत और श्रृंगाररस में परिणत होने लगी।'' 54

भक्ति जिसका स्वरूप हमें पुराणों से मिलता आ रहा है। पहले भी 'भक्ति' भारतीय समाज का एक हिस्सा थी लेकिन मुस्लिम सल्तनत की स्थापना के बाद 'भक्ति' का प्रभाव पहले से कई गुना ज्यादा बढ़ गया। " प्राय: भागवत-महात्म्य के प्रथम अध्याय श्लोक 45-50 के इस कथन को स्वीकार कर लिया गया कि भक्ति द्राविड़ देश में जन्मी और उसी आधार पर हिन्दी की उक्ति चल निकली --" भक्ति द्राविड़ उपजी, लाये रामानन्द'' 55

भक्ति की परिभाषा और व्याख्या तथा भक्ति के प्रकारों को देखने से पता चलता है कि भक्ति का संबंध मानवहृदय से है। और भक्ति भावमयी होती है। आत्मकल्याण और लोककल्याण करने वाले कर्मों की ओर जनता को भक्त कवि ले गये। इसलिए भक्तिकाल को लोकजागरण काल भी कहा जाता है। भक्त कवियों ने हिन्दू समाज के लोगों में आशा और नई उम्मीदें जगाने के लिए तथा इस्लाम के अत्याचारों को दूर करने के लिए भक्ति मार्ग को अपनाया और भक्ति के द्वारा उनका विरोध करने लगे। "भारतीय भक्ति साहित्य भारत की प्राय: सभी भाषाओं में मिलता है। भक्ति साहित्य ने भारतवर्ष की आधुनिक भाषाओं को अनुप्राणित किया है। भक्ति साहित्य लोकभाषाओं में लिखा गया है। वह जन-मन को आन्दोलित करने वाला है। इस आन्दोलन को सांस्कृतिक आन्दोलन कह सकते हें इसी आन्दोलन ने भारत को पूरी तरह से इस्लाम में परिणत होने से बचाया है। ईरान की तरह इस्लाम में परिणत नहीं हुआ।'' 56 इस्लाम और हिन्दू धर्म के संसर्ग से एक एक वर्ग का निर्माण हुआ जिसमे दोनों धर्म का मिश्रण था। यह वर्ग सूफी मत नाम से जाना जाता है। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम भावना को एक करने के लिए तथा भेदभावों को दूर करने के लिए हिन्दू धर्म की कुरीतियों और मुसलमानों

के कुरिवाजों का विरोध करते हुए भक्तिमय सुधार आन्दोलन शुरू किया। परिणाम स्वरूप यह आन्दोलन धीरे-धीरे बढ़ता गया और प्रत्येक सम्प्रदाय के लोगों ने भक्तिमार्ग के माध्यम से अपेन धर्म का प्रचार करके इस्लाम का खण्डन करने लगा। यहीं से भक्ति आन्दोलन की शुरुआत हुई।

भक्ति आन्दोलन के माध्यम से मुख्य रूप से हिन्दू तथा इस्लाम के निम्नलिखित रीतिरिवाज पर कुठाराघात सूफी सम्प्रदाय ने किया। जो इस प्रकार है---

1. जातिप्रथा तथा अस्पृश्यता का खण्डन करना
2. धर्म की सादगी का समर्थन
3. मूर्तिपूजा का विरोध
4. एकेश्वरवाद का उपदेश देना
5. सभी धर्मो को आधार भूत समानता का उपदेश दिया
6. दार्शनिक पण्डितों तथा मुल्लाओं की सर्वोपरिता की निन्दा की
7. धार्मिक कर्मकाण्ड तथा बाह्याडंबर का विरोध
8. मोक्ष प्राप्ति के लिए भक्ति, श्रद्धा व विश्वास पर बल
9. जन्म के स्थान पर कर्म को देना
10. उनका मानना था कि सच्चा धर्म ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति में है।
11. उन्होंने मुक्ति का एकमात्र साधन भक्ति को बताया

सूफी सम्प्रदाय के अलावा भी इस भक्ति युग में भक्त आन्दोलन का प्रचार अन्य कई सम्प्रदायों ने किया। इसमें सगुण भक्तिधारा और निर्गुण भक्तिधारा ऐसी दो धाराओं का जन्म हुआ। इन धाराओं में भी भिन्न मत को मानने वाले थे, प्रत्येक धारा और मत को मानने वाले कवियों ने इस परम्परा को आगे बढ़ाने का काम किया। जिसकी चर्चा इसी अध्याय में आगे की जा चुकी है।

इन धाराओं के कवियों की चर्चा आगे की जा चुकी है पुन: उनकी चर्चा करना पृष्ठपेषण मात्र होगा। यहॉ पर प्रवर्तक कवि और उसके विचारधारा को व्यक्त किया गया है।

निर्गण भक्तिधारा

यह वह धारा है जो इस्लाम की तरह भगवान के निराकार स्वरूप का मानती है। लेकिन वह खुद में ही भगवान के अस्तित्व को स्वीकार करती है। वे कवि मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड, जातिपॉति, वाह्याडंबर, बलिप्रथा, पीर, पंडित, मुल्ला आदि का विरोध करते थे। इस धारा के मुख्य कवि कबीर है, जिनके भक्ति आन्दोलन का स्वरूप निम्न है।

कबीर (ज्ञानाश्रयी शाखा)

कबीर स्वयं एक निम्न जाति के अशिक्षित संत कवि थे। उनकी काव्यनुभूति इतनी प्रबल थी कि वह पढ़ने और सुनने वाले के हृदय को रोमंचित कर देती थी। कबीर भावना के प्रबल, अनुभूति से युक्त उत्कृष्ट रहस्यवादी, समाज सुधारक, पाखण्ड के आलोचक, मानवतावादी और सामन्तवादी कवि थे। " उत्तर भारत के अन्य प्रसिद्ध संत कबीर ने हिन्दुओं और मुसलमानों में सामंजस्य की भावना स्थापित करने के लिए उत्साहपूर्वक हार्दिक प्रयत्न किये। उन्होंने प्रेम-धर्म का उपदेश दिया जिसका उद्देश्य समस्त वर्गों और सम्प्रदायों में एकता का विकास करना था। उन्होंने इस्लाम और हिन्दू धर्म की विस्तीर्ण खाई को भरने तथा उसमें सहयोग, समन्वय और सम्मिलन की भावना उत्पन्न करने का सफल प्रयास किया। उन्होंने दोनों धर्मो के बाह्य भेदों, रूढ़ियों एवं आडम्बरों का खण्डन करते हुए उनकी आन्तरिक एकता पर अधिक जोर दिया। उन्होंने मूर्ति-पूजा और कर्मकाण्ड की निन्दा की, जाति-भेद को व्यर्थ बताया, मनुष्य की समानता पर अधिक बल दिया और इस बात की घोषणा की कि ईश्वर के उच्च सिंहासन के सम्मुख, ऊॅच-नीच, और मुस्लिम और हिन्दू सभी समान हैं एवं विभिन्न धार्मिक मार्ग एक ही लक्ष्य की ओर ले जाने का प्रयास करते हैं। कबीर की शिक्षाओं पर , जो रहस्यवाद से ओतप्रोत थी, इस्लाम के सूफी संतों का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कबीर एक निर्मल भविष्य के स्वप्नदृष्टा थे, जिसमें असत्य और असमानता तथा आडम्बर और अलंकार का सर्वथा अभाव था। वे समाज के दृढ़ सचेतक, निर्भय आलोचक, हिन्दू-मुस्लिम एकता के महान अग्रदूत और विशुद्ध मानव धर्म के प्रशस्त प्रचारक तथा महान धार्मिक क्रान्तिकारक थे।'' 57

कबीर की भाषा सधुक्कड़ी थी। उसी में उन्होंने अपने पदों की रचना की थी। उनके द्वारा रचित सभी पद ऐसे थे जो किसी भी वर्ग या धर्म के लोगों को प्रभावित कर सकते थे। उन्होंने अपनी रचना साखी, सबद तथा रमैनी में की है जिसका संग्रह 'बीजक' में किया गया है।

ज्ञानाश्रयी शाखा की प्रमुख विशेषताएं :--

1. निर्गुण उपासना
2. निरक्षर कवि
3. जाति-पॉति का विरोध
4. पाखंड का विरोध
5. हिन्दू-मुस्लिम एकता

6. माया से बचने का उपदेश

7. गुरू की महत्ता

8. रहस्यात्मकता

9. काव्य रचना तथा भाषा

10.रस और अलंकार

प्रेमाश्रयी शाखा

प्रेमाश्रयी शाखा के कवियों को सूफी नाम से भी जाना जाता है। सभी सूफी कवि मुसलमान हुआ करते थे। उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों को मण्डनात्मक प्रवृत्ति के माध्यम से पास में लाने की कोशिश की।" सूफियों का दर्शन उदार तथा मानवीय है। यहॉ एकेश्वरवाद का आग्रह है और इस्लामी धर्म के अनुसार निराकार का प्रचार। ईश्वर परमसत्ता है और यह दृश्यमान जगत उसी पर निर्भर है। परमात्मा ने अपने नूर या ज्योति से सृष्टि बनाई और वह सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान होकर भी परम दयालु है । सूफी दर्शन की मान्यता है कि मनुष्य परमात्मा की अनन्यतम अभिव्यक्ति है और उसका चरमोतकर्ष पूर्ण मानव है। जिसमें परमात्मा के समग्र गुण प्रकाश देते है। इस प्रकार पूर्ण मानव मनुष्य तथा परमात्मा के बीच की कड़ी है। परमात्मा उसी में अपने आपको पूर्ण रूप से प्रकाशित करते हैं। पूर्ण मानव परमात्मा के साथ एकत्व की पूर्ण अनुभूति करता है। मनुष्य को उसकी पूर्णता पर ले जाना और परमात्मा से उसका मधुर समबन्ध स्थापित करना उच्चतम मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयत्न है। पैगम्बर, मुहम्मद, अल्लाह के नूर से जन्मे पूर्ण मानव हैं। आत्मा अथवा जीव की स्थिति यह है कि पहले खुदा से अभिन्न था पर नफ्स या माया उसे अधोमुखी बनाती है। यदि हम अहं का विलीनीकरण कर सके, अपनी हस्ती को फना कर सकें तो फिर अल्लाह में समा जाएगें, जैसे मदिरा में जल। यह सूफियों का प्रेमपंथ है जिसके महत्व को आचार्य रामचन्द्र शुकल ने स्वीकारा है। सूफियों के प्रेमाख्यानों की परम्परा के मूल में यही आध्यतिमक प्रेम है। जिसे प्रतीकों के माध्यम से मार्मिक से मार्मिक अभिव्यक्ति दी गई है। आत्मा-परमात्मा का मिलन श्रेष्ठ गुरू के बिना संभव नहीं है। "गुरू सुआ जेहि पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।।" सूफियों की आध्यात्मिक प्रेम कल्पना उनकी उदार मानवीयता से उपजी है और उन्होंने लौकिक भारतीय कथाओं में अपने सूफी प्रेमदर्शन को ऐसे विलप्ति कर दिया कि उन्हें अलग कर पाना संभव नही था। मुल्ला दाउद (चंदायन); शेख कुतुबन (मृगावती) जायसी (पद्मावत) मंझन(मधुमालती), उस्मान(चित्रावली) आदि प्रेमाख्यानक कवियों की लंबी परम्परा है।" 58

प्रेमाश्रयी शाखा अथवा सूफी काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएं:--

1. निर्गुण ईश्वर में विश्वास
2. गुरू की महिमा
3. सिद्धि में शैतान को बाधक मानना
4. साधना की चार अवस्थाएं
5. लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की प्राप्ति
6. हिन्दू मुस्लिम एकता
7. रहस्यवाद
8. प्रबंधात्मकता
9. भाषा, छंद, अलंकार
10. प्रतीक विधान
11. मसनवी शैली

संत कवियों तथा सूफी कवियों पर हम मुस्लिम सम्प्रदाय का बड़ा गहरा प्रभाव है। वह हम उनकी कृतियों के माध्यम से देख सकते हैं। संत कवियों ने ज्ञान के माध्यम से भक्ति के प्रभाव को व्यक्त किया है और लोगों को जागृत किया है, तो सूफी कवियों ने प्रेम के माध्यम से लोगों में भक्ति को जागृत करके लोगों को लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम यानी ईश्वर को प्राप्त करने का मार्ग बताया। दोनों के मार्ग अलग थे लेकिन लक्ष्य एक ही था। वह ईश्वर की प्राप्ति दोनो धारा के कवि ईश्वर के रूप को न मानकर भक्ति के माध्यम से समाज के दुर्गुणों को दूर करना चाहते थे।

सगुण भक्ति धारा

इस धारा के कवि भगवान के साकार रूप को मानते थे तथा उनकी पूजा करते थे। उनका मानना था कि निगुर्ण निराकार ईश्वर को पूजना मनुष्य के लिए आसान नहीं था। भारत की जनता पहले से ही मुस्लिम आतंक से त्रस्त हो चुकी थी। उन्हें भगवान की शरण चाहिए थी, ऐसे में अगर उन्हें खुद के अन्दर भगवान ढूंढवाना कठिन था। लेकिन अगर एक मूर्ति उन्हे दे दी जाय और कहा जाय तो वह बड़ी आसानी से उसकी पूजा अर्चना करेगें, इसलिए सगुण भाक्ति धारा ने भगवान के साकार रूप यानी कि भगवान का निश्चित स्वरूप दर्शाकर उनकी आराधना की। सगुण भक्ति धारा में दो प्रकार की शाखाएं प्राप्त होती है।

* कृष्ण भक्ति शाखा

* राम भक्ति शाखा

कृष्ण भक्ति शाखा

कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि सूरदास जी हैं। सूरदास का काव्य मानवीय संवेदना का काव्य है, इस नाते यह कभी पुराना नही हो सकता। सूरदास का काव्य ऐसा है जिसे पढ़ने से संवेदना जागृत होती है और उसी संवेदना से हमारे भाव मानवीय हो जाते हैं। सूरदास ने हमें यह अनुभव करवाया है कि कृष्ण हमारे बीच है और वह जन-जन में बसे है। सूर के पदों ने हमें यह महसूस करवाया है कि कृष्ण हमारे बीच है और वे कृष्ण हमारे सुख दुख मे हमारा साथ देते हैं।

उस समय की परिस्थिति में लोगों में यह भावना जगाना अत्यंत आवश्यक था क्योंकि उस समय भारतीय समाज मुस्लिम अत्याचारों की वजह से भगवान के शरण में गया था और उनके दिल से भगवान की श्रद्धा उठ जाती तो उनका पतन निश्चित ही होता है।

सूरदास

" सूरदास कृष्ण भक्त कवि है और इस रूप में उनकी ख्याति है। सूर के कृष्ण को हम व्यक्ति माने और कृष्ण को छोड़कर और और जो वर्ग या समूह सूरकाव्य में है, उसे समाज माने इस तरह से व्यक्ति और समाज के आपसी संबंधों पर विचार करें। अर्थात् कृष्ण व्यक्ति रूप में समाज से किस तरह जुड़ते हैं, इस बात को हम परखें। सूर की खूबी यह है कि सूरदास व्यक्ति के रूप में कृष्ण को अलग से जानते हैं। उनके समाज में जुड़ने वाले लोग उनके रूप से परिचित हैं। यद्यपि सूरदास उस कृष्ण का वर्णन अधिक करते हैं, जो समाज से अधिक जुड़ता है तथापि सूरदास व्यक्ति कृष्ण को नही भूलते हैं। व्यक्ति कृष्ण की महिमा का बखान करते हुए उस कृष्ण को जनमानस में बसाने का कार्य सूर ने अपने काव्य में किया। सूर का काव्य इसलिए मानवीय संवेदना का काव्य है।" 59

सूरदास ने अपने पदों में कृष्ण के कई प्रंसंगों को दर्शाया है। जिसमें वह साधारण मनुष्य होते हुए एक असाधारण व्यक्ति के रूप में कार्य करते हैं। उन प्रसंगों का एकमात्र उद्देश्य यह है कि समाज के जनसमूह को यह विश्वास हो जाए कि कृष्ण भले ही एक साधारण मनुष्य हो पर जरूरत पड़ने पर वे अपने भक्त की रक्षा कर सकते हैं। 'उद्धव' जैसे पात्र के माध्यम से सूरदास ने यह बताने की कोशिश की है कि भगवान ओर भक्त दोनों एक साथ रह सकते हैं और भगवान अपने सच्चे भक्त की सेवा भी कर सकता है। भ्रमरगीत के माध्यम से उन्होंने यह दर्शाया है कि जैसे भक्त भगवान के बगैर नही रह सकता वैसे भगवान भक्त के बगैर नही रह सकते है। सूरदास के पदों के

माध्यम से लोगों में श्रद्धा, आस्था का विकास हुआ। जनसमूह को यह विश्वास होने लगा कि 'भगवान उनके दु:ख-दर्द का अंत जल्द ही लाएंगें।' यह विश्वास जनता में जगाना अति आवश्यक भी था।

सूरदास द्वारा रचित मुख्य रूप से तीन रचनाएं प्राप्त होती हैं -- 1. सूरसागर 2. सूरसारावली और 3. साहित्यलहरी।

कृष्ण-भक्ति शाखा की प्रमुख विशेषताएं:--

1. कृष्णलीला का वर्णन
2. कृष्ण-काव्य में मौलिकता
3. पुष्टिमार्ग का अनुसरण
4. कान्त, वात्सल्य एवं सख्यभाव की प्रधानता
5. बाललीला वर्णन की प्रधानता
6. वात्सल्य और श्रृंगार रसों की प्रधानता
7. मुक्तक काव्य
8. सीमित छन्दों का प्रयोग
9. ब्रजभाषा काव्य भाषा
10. अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग

राम भक्तिशाखा

रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास है। तुलसीदास के व्यक्तित्व, काव्यकला, रामकथा निरूपण, भक्ति निरूपण तथा उपदेशात्मकता ने हिन्दी प्रदेश की मर्यादान्वित साधना को चरम सीमा तक पहुँचा दिया। इनकी रचनाओं में राम कृष्ण एवं शाक्त कथाओं का समावेश है। परन्तु मानव जीवन की विशद समीक्षा तथा आदर्शों की स्थापना और तत्कालीन धार्मिक व्यवस्था में पथ-प्रदर्शन करने के लिए उन्होंने मुख्यत: राम काव्य को ही माध्यम बनाया। अत: हम उनकी अन्य देवी-देवताओं की कथाओं पर प्रस्तुत हुई रचनाओं की चर्चा अन्यत्र ही करेगें। राम की कथा के माध्यम से अपने ही विचारों को प्रकट करने और सांस्कृतिक विकास एवं समन्वय में अनन्य योग देने के कारण गोस्वामी तुलसीदास रामभक्ति शाखा के सम्राट बन गये। उनकी रचनाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उन्होंने मर्यादा सीमित भक्ति, महान साहित्यक प्रयोगों और समस्त युगों की समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया है।

गोस्वामी तुलसीदास ते सूरदास की तरह अपने आराध्य देव को देवी शक्ति नहीं बताया उनका मानना है कि मनुष्य दैवी शक्ति पर भरोसा करके अपना कर्म नहीं करता। लेकिन हर मुसीबत में वह भगवान के कुछ कार्य करने की आशा रखेगा। लेकिन उन्होंने रामचरित मानस में यह दर्शाया है कि राम एक साधारण मनुष्य है। वे अपने जीवनकाल के दरम्यान एक साधारण मनुष्य की तरह हर कष्टों का सामना करते है, न कि प्रत्येक कष्टों को वे भगवान के सर पर डाल देते हैं। उन्होंने भगवान का स्मरण करके हर विपत्ति का निडरतापूर्वक सामना किया है और खुद भी उस विपत्ति में से उभर कर बाहर भी आए हैं। जब कि सूरदास ने अपने काव्य में यह दर्शाया है कि कृष्ण जो दैवी पुरुष हैं उन्होंन सभी विपत्तियों का नाश किया है। तुलसी ने मनुष्यों को यह समझाने की कोशिश की है कि कष्ट के समय में मनुष्य को हर मुसीबत का डटकर सामना करना चाहिए तभी हम उसमें सफल होगे। भगवान भी उन्हीं मनुष्यों का साथ देता है जो अपना कर्म स्वयं करते हैं। तुलसीदास ने अपनी रचना 'रामचरितमानस' में भगवान राम को मर्यादापुरुषोत्तम' दर्शाया है। जिसके माध्यम से उन्होंने समाज में चल रहे बहुपत्नी प्रथा भोग-विलास पर कुठाराघात किया है। भक्ति का सामाजिक स्वरूप तुलसीदास के मानस में इस तरह मुखरित हुआ है। तुलसी का मानस स्वयं एक धर्मग्रंथ बन गया है। तुलसीदास ने अपनी रचनाओं को स्वान्त:सुखाय के लिए रची थी लेकिन वह लोककल्याण के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है। यही कारण है कि तुलसी का मानस वाल्मीकि रामायण से अधिक प्रचलित हो गया है। उत्तर भारत के लोगों के हर घर में आपको रामचरित मानस की एक छोटी बड़ी प्रति अवश्य दिखेगी। तुलसी ने अपने मानस में राम को जातिवाद, छुआछूत से दूर रखा है। उन्होंन यह बताया है कि भगवान सबके हैं और उन पर सबका समान अधिकार है। उन्होंने अपने मानस में सगुण निर्गुण का शैव-वैष्णव का संगम बताया है। उन्होंने सबके कर्मों के आधार पर भगवान राम के दशर्न करवाए हैं। राम न केवल ब्राह्मणों के हैं बल्कि उन पर सबका समान अधिकार है। उन्होंने लोगों के बीच के भेदभाव को दूर करने की कोशिश की है। तुलसीदास द्वारा रचित मुख्य रचनाएं इस प्रकार हैं--

1.रामचरित मानस 2. रामलला नहछू 3. वैराग्य संदीपनी 4. बरवै रामायण 5. पार्वती मंगल 6. जानकी मंगल 7. रामाज्ञा प्रश्न 8. दोहावली 9. कवितावली 10 गीतावली 11 श्रीकृष्ण गीतावली 12. विनयपत्रिका

लोकजागरण के अन्य कवियों में खुसरो, विद्यापति, नरोत्तमदास, रहीम, सेनापति, आलम, बोधा, घनानंद, मीरा, शंकराचार्य, वल्लभाचार्य, रामानुजाचार्य, चैतन्य, रैदास आदि का नाम आता है जिन्होंने भक्ति आन्दोलन के माध्यम से लोगों को जागृत किया।

रामभक्ति शाख की प्रमुख विशेषताएं

1. दास्य भाव भक्ति
2. मर्यादा की प्रतिष्ठा
3. आदर्श की स्थापना
4. लोकमंगल की भावना
5. काव्यरूपों की विविधता
6. भाषा प्रयोग में विविधता
7. सभी रसों का समन्वय
8. विविध छन्दों का प्रयोग
9. प्रकृति-चित्रण
10. जन-श्रद्धा का आधार
11. समन्वय भावना
12. विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के साथ भक्ति पर बल

" भक्ति आन्दोलन की जो लहर दक्षिण से आई उसी ने उत्तर भारत की परिस्थिति के अनुरूप हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्तिमार्ग की भावना कुछ लोगों में जगाई। हृदय पक्ष शून्य सामान्य अन्तरसाधना का मार्ग निकालने का प्रयत्न नाथपंथी कर चुके थे। पर रागात्मक तत्व से रहित साधना ही मनुष्य की आत्मा तृप्त नहीं कर सकती है। महाराष्ट्र देश के प्रसिद्ध भक्त नामदेव (संवत 1328-1408) ने हिन्दू मुसलमान दोनों के लिए सामान्य भक्तिमार्ग का भी आभास कराया। उसके पीछे कबीरदास ने विशेष तत्परता के साथ एक व्यवस्थित रूप में यह मार्ग ' निर्गुण पंथ' के नाम से चलाया। कबीर के लिए नाथ पंथी जोगी बहुत कुछ रास्ता निकाल चुके थे। भेदभाव को निर्दिष्ट करने वाले उपासना के बाहरी विधानों को अलग रखकर उन्होंने अन्तरसाधना पर जोर दिया था। पर नाथ पंथियों की अन्तरसाधना हृदय पक्ष शून्य थी, उसमें प्रेमतत्व का अभाव था। कबीर ने यद्यपि नाथ पंथ की बहुत सी बातों को अपनी बानी में जगह दी है। पर यह बात उन्हें खटकी -- । अत: कबीर ने जिस निराकार ईश्वर के लिए भारतीय वेदांत का पल्ला पकड़ा उसी प्रकार उस निराकार ईश्वर की

भक्ति के लिए सूफियों का प्रेमतत्व लिया और निर्गण पंथ' बड़ी धूमधाम से निकाला। बात यह थी कि भारतीय भक्तिमार्ग साकार और सगुण रूप लेकर चला तथा निर्गुण निराकार ब्रह्म, भक्ति या प्रेम का विषय नहीं माना जाता है। इसमें संदेह नहीं कि कबीर ने हर मौके पर जनता के उस बड़े भाग को संभाला जो नाथ पंथियों के प्रभाव से प्रेमभाव और भक्तिरस से शून्य और शुष्क पड़ता जा रहा था।----। इसके साथ ही मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्मगौरव का भाव जगाया और भक्ति के ऊँचे सोपान की ओर बढ़ने के लिए बढ़ावा दिया। ----। कबीर तथा अन्य निर्गुणपंथी संतों के द्वारा अन्तर्साधना में रागात्मिका'भक्ति' और ज्ञान का योग तो हुआ पर कर्म की दशा वही रही जो नाथपंथियों के यहॉ थी। इन संतों के ईश्वर ज्ञानस्वरूप और प्रेमसवरूप ही रहे। धर्मस्वरूप न हो पाए। ईश्वर के धर्मस्वरूप को लेकर उस स्वरूप जिसकी रमणीय अभिव्यक्ति लोक की रक्षा और रंजन में होती है, प्राचीन वैष्णव भक्तिमार्ग की रामभक्ति शाखा उठी। कृष्ण भक्तिशाखा केवल प्रेमस्वरूप ही लेकर नई उमंग से फैली।'' 60

इस तरह से भक्ति काल में भक्तिकालीन कवियों ने अपने-अपने साहित्य के माध्यम से लोगों में ईश्वर पर आस्था, मानवीय भावनाओं आदि को जागृत किया। सबसे बड़ी बात इन कवियों ने जो की वह थी इस्लामी सभ्यता से बचाकर उनमें स्वाभिमान, जागृत कर उनमें नवचेतना का संचार करके भारत को इस्लामी देश होने से बचाना। इसलिए इस काल को 'लोकजागरण काल' या 'भक्ति आन्दोलन काल' भी कहा जाता है।

पुनर्जागरण काल

'नवजागरण' बौद्धिक और सौन्दर्य विषयक जागृति की तथा धर्म निरपेक्ष संस्कृति की एक लहर है। जो संभवत: 14 वीं सदी में में इटली में उद्भूत हुई और वह 15वीं सदी में के उत्तरार्ध और 16 वीं सदी के प्रारम्भ में फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैण्ड तथा स्पेन में उसका उत्थान और पतन हुआ। पाश्चात्य देशों में नवजागरण को 'रिनेसास' (Renaissa) कहते हैं। भारत में नवजागरण की शुरुआत 19 वीं सदी के उत्तरार्ध से मानी जाती है।

" जब अठारहवीं सदी के मध्य में भारत में अंग्रेजी सत्ता ने अपने पैर जमा लिए थे, तब भारत राजनीतिक दुर्बलता और नैतिक पतन के निम्न स्तर पर था। मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात समृद्धि नष्ट हो गई थी। आबादी कम हो गयी थी, वाणिज्य और व्यापार में विघ्न उत्पन्न हो गये थे, आर्थिक अर्थव्यवस्था और अराजकता हो गई थी तथा छोटी-छोटी रियासतों के निरन्तर संग्रामों के कारण संस्कृति पीछे ढकेल दी गई थी। सामाजिक प्रथाओं व रूढ़ियों में राजनीति, धर्म और कला के

क्षेत्र में हमने असृजान्तमक प्रवृत्ति अपना ली थी। हमने अपनी मानवता का प्रयोग करना भी त्याग दिया था। भारतीय सभ्यता व संस्कृति लगभग मरणोन्मुखी, अश्लील और प्रभावहीन हो चुकी थी। अठारहवीं सदी के मध्य से लगभग सौ वर्ष तक वह पतन के अत्यन्त ही निम्न स्तर पर हो गई थी। उस अंधकारमय युग में किसी भी भारतीय भाषा में किसी भी सर्वश्रेष्ठ महत्वशाली कृति की रचना नहीं हुई थी। धर्म में भी कोई नया विकास नहीं हुआ था। और संरक्षण के अभाव में लगभग समस्त ललितकलाएं प्राप्तहीन एवं विलुप्त हो गई थी। लोगों की अनभिज्ञता तथा असावधानी एवं विदेशियों के अति लाभ से ललित कलाओं के अनके ग्रन्थ लुप्त हो गए थे। ऐसे कतिपय ग्रन्थ विदेशों में भी चले गये थे। थोड़े समय के लिए एक बिल्कुल भिन्न पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क ने धर्म, कला, विज्ञान, दर्शन और बौद्धिक ज्ञान में सृजान्तमक शक्ति का अंत कर दिया। शिक्षित वर्गों के लोग सभी पाश्चात्य वस्तुओं के बिना सोचे-समझे प्रशंसा करने लगे और उन्हें अपनाने तथा सभी देशी वस्तुओं को घृणा की दृष्टि से देखने लगे।

सामाजिक जीवन के क्षेत्र में अराजकता और अव्यवस्था का राज्य आ गया था। जीवन और सम्पत्ति सुरक्षित नहीं थी। देहातों में भाग्य की खोज करने वाले भाड़े के सैनिकों द्वारा लूट-खसोट, मारपीट, खून-खच्चर और डाकेजनी की घटनाएं होती थी। समाज के मूल में जो सड़न पैदा हो गई थी वह सर्वप्रथम सैनिक और राजनीतिक निर्बलता के रूप में प्रकट हुई। देश उग्र सामुद्रिक शक्तियों के तीव्र आक्रमणों से स्वयं अपनी रक्षा न कर सका। नौकरियों के सभी विभागों में भ्रष्टाचार कार्यहीनता, असमर्थता, अयोग्यता और छल-कपट घर कर गये थे। कला और धर्म नष्ट हो गया था। वस्तुतः जब अंग्रेजी विजय प्रारम्भ हुई तब प्राचीन व्यवस्था मृतप्राय हो गयी थी और उसके स्थान की पूर्ति करने के लिए कुछ नहीं था।'' 61

यह नवीन पाश्चात्य शिक्षित वर्ग, तर्कवाद विज्ञानवाद तथा मानवतावाद से बहुत प्रभावित हुआ। भारतीय नेताओं ने इस नवज्ञान से प्रभावित होकर अन्दर से हिन्दू धर्म को सुधारने का प्रयत्न किया और अंध विश्वास मूर्तिपूजा तथा तीर्थयात्रा इत्यादि को तर्क के तराजू में तोल कर धर्म में सुधार किया। इस सुधार नीति को " सामाजिक धार्मिक सुधार आन्दोलन'' भी कहा जाता है। इसके प्रणेता राजाराममोहनराय हैं। वे ही भारतीय समाज में नवजागरण के जन्मदाता हैं। उन्होंन 20 अगस्त 1828 में 'ब्रह्मसमाज' की स्थापना की ताकि वह समाज में प्रचलित धार्मिक आडम्बर एवं कुरिवाजों को दूर कर लोगों को पुनः जागृत कर सके। इनके बाद कई संस्थाएं एवं आन्दोलन हुए, जो इस प्रकार हैं -

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY • The M. S. University of Baroda

समाज	**संस्थापक का नाम**	**स्थापना वर्ष**
वेद समाज	राधाकान्त अग्निहोत्री	1840
प्रार्थना समाज	डॉ.आत्माराम पांडुरंग आठवले	1867
आर्य समाज	स्वामी दयानंद सरस्वती	10 अप्रैल, 1875
रामकृष्ण मिशन	स्वामी विवेकानन्द	9 दिसम्बर, 1887
थियोसोफिकल सोसायटी	डा. एनी बेसेन्ट	1882

अन्य हिन्दू सुधारक एवं समाजसेवक आंदोलन

मुस्लिम धर्म सुधारक आन्दोलन

भारत में मध्यमवर्गीय लोगों का उदय

सिक्ख धर्म सुधारक आन्दोलन

भारतीय संस्कृति का पुनरुत्थान

पारसी सुधार आन्दोन

स्त्री उद्धारक आंदोलन

जाति उद्धारक आन्दोलन

इन आन्दोलन के कारण ही भारतीय समाज के धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक कुव्यस्थाओं के बारे में लोगों में जागृति आई और इसी की वजह से धर्म, समाज और संस्कृति के साथ साथ राष्ट्र के विकास में विलक्षण परिवर्तन आया। " हैवेल ने कहा है, बिना पुनर्जागरण के कोई भी सुधार सम्भव नहीं है।" 62

पुनर्जागरण या पुनरुत्थान के कारण

इसके निम्नलिखित कारण हैं जो इस प्रकार हैं ---

1. अंग्रेजों का आगमन और पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव
2. विश्व के अन्य देशों से और विशेषकर पश्चिम से सम्पर्क
3. अंग्रेजी शिक्षा
4. प्रारम्भिक ईसाई धर्म-प्रर्वतक
5. भारतीय मुद्रणालय, पत्र, मासिक और साहित्य

इन सभी के बारे में अध्याय-1 के बिन्दु-1 में पूरे विस्तार से चर्चा किया जा चुका है। पुनः चर्चा करना मात्र पृष्ठपेषण ही होगा।

भारतीय नवाभ्युत्थान या पुनर्जागरण के लक्षण

1. पुनरुज्जीवन के विविध आन्दोलन
2. हिन्दू धर्म का पुनरुज्जीवन
3. सामाजिक सुधार
4. भारतीय इतिहास की पुन: प्राप्ति
5. प्राचीन साहित्य की पुनः प्राप्ति
6. भारत की देशी भाषाओं के साहित्य का विकास
7. अनुसन्धान की वैज्ञानिक भावना का विकास
8. ललित कलाएं, इसके अन्तर्गत- चित्रकला, वास्तुकला, तक्षणकला तथा संगीत और नृत्य।
9. नवीन मध्यम वर्गो का उत्कर्ष
10. औद्योगीकरण की भावना

इन सब के बारे में अध्याय-2 के अन्तर्गत बिन्दु-1 में विस्तृत चर्चा हो चुकी है। इस पुनरुत्थान से ही भारत ने कई शतब्दियों की कुम्भकर्णी निद्रा त्याग दी। इसी समय भारत में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक साहित्यक, बौद्धिक, वैज्ञानिक और आर्थिक क्षेत्र में विलक्षण जागृति और अपूर्व प्रगति हुई। राजनीतिक क्षेत्र में जो जागृति हुई उससे राष्ट्रीयता की लहर समस्त देश में फैल गई और अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष व विद्रोह की भावना का उत्कर्ष हुआ। जो आजादी प्राप्त करने के बाद शांत हुआ। इस पुनरुत्थान ने तो समाज की काया पलट दी। भारतीय समाज में सती प्रथा, बालिका वधू, बाल-विवाह पर्दा प्रथा अशिक्षा, अस्पृश्यता और जटिल जाति व्यवस्था आदि जैसी घातक और अनिष्टकारी कुप्रथाएं समाज में प्रचलित थी जिससे समाज की दुर्दशा अत्यन्त खराब हो गई थी और देश का अध: पतन हो गया था, उसे इसने जड़ से नाबूत किया और इसकी वजह से भारतीयों को अपने हिन्दू धर्म में दृढत्र विश्वास हुआ। स्वर्णिम अतीत का ज्ञान हुआ और अपने उज्जवल भविष्य में आशा व विश्वास का संचार हुआ।

साहित्य क्षेत्र में पुनरुत्थान होने की वजह से अंग्रेजी विद्वानों ने भारतीय साहित्य एवं पुराण पर अध्ययन किया और उसे नए काव्य रूप से उजागर किया। जिससे भारतीयों को अपने राष्ट्र में विलुप्त हुए यश गौरव और अतीत के स्वर्णिम इतिहास का प्रमाणित परिचय मिला। इससे भारतीय इतिहास का

पुनर्निर्माण हुआ। इसके साथ भारतीयों का ध्यान विविध ललितकलाओं की तरफ भी गया। आर्थिक क्षेत्र में पश्चिम में हुए वैज्ञानिक आविष्कारों और यन्त्रों के आधार पर भारत का औद्योगीकरण करने का प्रयास किया गया। इससे नवीन कारखानों का जन्म हुआ और उत्पादन में वृद्धि हुई। आधुनिक युग में भारत पर पश्चिम का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है।

लोकजागरण एवं नवजागरण में अन्तर

'नवजागरण' और 'लोकजागरण' ये दोनों अलग-अलग देशों की उपज है। दोनों प्रदेशों की तत्कालीन प्रवृत्तियों के आधार पर इनका जन्म हुआ और यह अपने-अपने परिवेश से खुराक लेकर पुष्पित और पल्लवित हुई। यहाँ हम इन्हीं दोनों के पारस्परिक अन्तराल को प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहें है।

'लोकजागरण' का प्रारंभ सामान्यत: 13वीं-14वीं शताब्दी से माना जाता है। जबकि लगभग उसी समय यूरोप में जो हलचल होती है, उसे 'नवजागरण' का नाम दिया जाता है। दोनों में 'जागरण' सामान्यत: मौजूद है। दोनों में नई चेतना का विकास हुआ, किन्तु दोनों में प्रयुक्त उपसर्ग 'लोक' और 'नव' भिन्न है। लोकजागरण के केन्द्र में ईश्वर आता है जो उस समय आम् जनता की समस्याओं के निराकरण का आधार बनता है। यूरोप में नवजागरण के समय जनक्रान्ति हुई। अर्थव्यवस्था की गड़बड़ी को रोकने के लिए जनआन्दोलन हुए, साामजिक क्रान्ति हुई। इस सब के सम्मिलित रूप को 'नवजागरण' नाम दिया गया। जिसका विस्तृत विवेचन पीछे किया जा चुका है।

भारत में यूरोपीय नवजागरण 19वीं शताब्दी में आता है। जिसकी भूमि विदेशी है जबकि लोकजागरण हमारे भारत की भूमि पर खड़ा होता है। यूरोप का नवजागरण कभी लोकजागरण का रूप नहीं ले पाया। उसके नवजागरण की भूमिका सीमित थी, जबकि लोकजागरण की भूमिका असीमित थी। 13वीं -14वीं सदी का भक्ति आन्दोलन ही 'लोकजागरण' का रूप लेता है। 'नवजागरण' शब्द से स्पष्ट होता है कि- ये नया जागरण है। अर्थात् इसके पहले एक जागरण हो चुका है, जो हो चुका है वही 'लोकजागरण' है। दोनों की पृष्ठभूमि, भूमिका और समस्याएं बिल्कुल भिन्न है। पृष्ठपेषण से बचने के लिए हम उन सब समस्याओं की चर्चा यहाँ नहीं कर रहे हैं, उनकी चर्चा अपने-अपने शीर्षक में की जा चुकी है।

'लोकजागरण' सामाजिक जागरण के साथ-साथ एक धार्मिक जागरण भी है। जबकि 'नवजागरण' के केन्द्र में धर्म नहीं है। वह सामाजिक विकास का जागरण है, आधुनिकीकरण है। लोकजागरण में

वल्लभाचार्य, शंकराचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, तथा कबीर, तुलसीदास, सूरदास जैसे कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से लोगों में भगवान के लिए आस्था जगाई तथा लोगों को धर्मभीरू बनाया, लेकिन वे भारतीय समाज की रूढ़िगत परंपराओं को न तोड़ सके। जबकि नवजागरण से एक नये युग का प्रारंभ होता है। यह नया युग समाज में, साहित्य में, धर्म में तथा आर्थिक रूप में भी परिवर्तन लाता है। पुरानी घिसीपिटी मान्यताओं को, रूढ़ियों को, परम्पराओं को, समाप्त करके नयी चेतना का विकास करता है।

लोकजागरण के समय साहित्य के क्षेत्र में पद्य विधा की प्रचुरता देखने को मिलती है, तथा इस समय सगुण भक्तिधारा के कवियों ने ज्यादातर राम और कृष्ण के श्रृंगार वर्णन, विरह वर्णन एवं लीलाओं का गान किया है। जबकि निर्गुण भक्तिधारा के कवियों ने ईश्वर के निराकर रूप को महत्व देकर उनके निर्गुण गुण की उपासना की। किन्तु 'नवजागरण' काल इससे परे है। इस समय गद्य की विभिन्न विधाओं का विकास हुआ तथा इस समय के लेखकों में- भारतेन्दु हरिश्चन्द, महावीरप्रसाद द्विवेदी, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, आदि ने स्वाधीनता आन्दोलन को प्रमुखता देते हुए धर्म को त्यागकर एकता को महत्व दिया और देश की आजादी एवं भारतीय समाज के रूढ़िगत परंपराओं के ऊपर तीखा व्यंग्य कसा।

'लोकजागरण' के समय हमारे धार्मिक नेताओं ने भारत को न केवल इस्लामी देश होने से बचाया, किन्तु लोगों में स्वाभिमान, जागरूकता और नवचेतना का संचार भी किया। जबकि नवजागरण ने उन स्वाभिमानी, जागरूक तथा नवचेतना से ओतप्रोत लोगों को देश की आजादी के लिए पुनःप्रेरित कर भारतदेश को रूढ़िगत परंपराओं एवं अंग्रेजों के चुंगल से निकलने का आत्मविश्वास प्रदान किया।

लोकजागरण के बाद भारतीय समाज में ओद्योगिक रूप से या सामाजिक रूप एवं पारिवारिक रूप से इतना बदलाव नहीं आया जितना नवजागरण के बाद प्रार्थना समाज, आर्यसमाज, वेदसमाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसॉफिकल सोसायटी जैसी संस्थाओं ने भारतीय समाज एवं पारिवारिक समस्याओं खासकर नारी को शोषण से मुक्त करवाया। इसके अलावा अंग्रेजों द्वारा 'स्वान्तःसुखाय' की भावना से शुरू की गई रेल, तार एवं वाहनव्यवहार की सुविधा ने भारतवासियों की समस्याओं को आधा कर दिया।

इस प्रकार 'लोकजागरण' और 'नवजागरण' दोनों पर गंभीरता से विचार करने पर बहुत सारे अन्तर दृष्टिगत होते हैं। यह विषय अपने आप में स्वतंत्र शोध का विषय बन सकता है किन्तु अपनी

समय-सीमा, अपने शोध-विषय की सीमा को ध्यान में रखते हुए मैनें अपने विचारों को व्यक्त करने का प्रयास किया है।

4. नवजागरण और विविध साहित्यिक विधाएं

नवजारण

' नवजागरण ' जिसका दूसरा नाम 'पुनर्जागरण' है। इटली, फ्रांस और यूरोप में इसे ' रिनेसांस' कहते हैं। यूरोप में इसकी शुरुआत 13 वीं 14 वीं शताब्दी में हो गई थी। जब हमारे देश में 'लोकजागरण' हुआ था। ' नवजागरण' की शुरुआत 1857 के युद्ध के बाद हुई। वह 19वीं सदी थी। 14 वीं सदी में लोगों ने एक बार भक्ति आंदोलन के माध्यम से जागृति मिल चुकी थी।इसलिए 19 वीं सदी में जब राजनैतिक क्रान्ति के माध्यम से लोगों में जागृतता सुसुप्त हो चुकी थी वह फिर से जाग उठी। इसलिए इसे नवजागरण काल या पुनर्जागरण काल कहा गया।

मध्यकाल जो अपने अवरोध, जड़ता और रूढ़िवादिता के कारण स्थिर और एकरस हो चुका था, वह एक विशिष्ट ऐतिहासिक प्रक्रिया, जो 1857 के विप्लव से उत्पन्न हुई नवजागरण की प्रक्रिया है उसने उसे पुन: गत्यात्मक बनाया। इसी के साथ ही आधुनिक काल का प्रारम्भ माना जाता है। डॉ. नगेन्द्र ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में ' आधुनिक' शब्द के दो अर्थ बताए हैं।" मध्यकाल से भिन्नता और नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण'' 63 यानी कि आधुनिक काल में मध्यकाल से भिन्न प्रवृत्तियॉ थीं। यहॉ लोगों में जागृति का संचय हुआ था। दार्शनिक चिन्तकों तथा धार्मिक व्यख्याताओं का आविर्भाव हुआ।

इस काल में पाश्चात्य संस्कृति का एक बड़ा उत्साह पूरे भारत में फैल गया। अंग्रेजी शिक्षण का प्रचार होने लगा, इसी समय 'मशीनयुग' का आरम्भ हुआ। अंग्रेजों ने अपनी सहूलियतों के लिए और अपनी उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए कई नई मशीनों की स्थापना करखानों में की। इसी युग में प्रेस, डाक, टेलीफोन, टेलीग्राफ की शुरुआत हुई। रेलवे, बस, मोटर की शुरुआत हुई इसी समय में राजाराम मोहनराय , स्वामी दयानंद आदि समाज सुधारकों ने भारतीय समाज की कुरीतियों जैसे सतीप्रथा, बालविवाह आदि को दूर करने का बीड़ा उठाया और शिक्षा आदि को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया। हमारा देश इस समय तक पूरा जागृत हो गया था इसलिए वे स्वतंत्रता के क्षेत्र में आगे बढ़ रहा था। पूरे देश को इस स्वतंत्रता के लिए एक जुट करना जरूरी था इसलिए भारतीयों ने अंग्रेजी मशीनों का फायदा उठाया और हर एक क्षेत्र की जन भाषाओं में लोगों के समाचार पत्र द्वारा संदेश

भेजने लगे। इसी समय हमारे साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से लोगो में जागृति लाने की कोशिश करने लगे। इसी जागृति की वजह से हमारे देश को आजादी मिली।

'नवजागृति' के आविभार्व से देश के हरेक क्षेत्र में परिवर्तन आने लगा, जिसकी चर्चा हम ऊपर कर आए है। इस परिवर्तन के साथ समाज के लोगों और उनकी सोच में भी परिवर्तन आया। जिसने मध्यकाल की रूढ़ि चुस्तता को खत्म करके आधुनिकता को जन्म दिया। अर्थात् हम यह कह सकते हैं कि नवजागृति या नवजागरण या पुनर्जागरण ही आधुनिक काल का जन्म दाता है। साहित्य समाज का दर्पण है इसलिए समाज में होने वाले हर परिवर्तन की असर साहित्य में जरूर होती है। पाश्चात्य संस्कृति के मेल, विविध मशीनों की उपलब्धि तथा हमारे देश की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं आर्थिक परिस्थिति के कारण हिन्दी साहित्य में अनेक विधाओं का जन्म हुआ। वे साहित्यिक विधाएं निम्नवत हैं जिसकी हम इस चार्ट के समझेंगें।

हिन्दी साहित्यक विधाएं

- पद्य
  - प्रबन्ध
    - महाकाव्य
    - खंडकाव्य
  - मुक्तक
    - छन्दबद्ध
    - छन्दमुक्त
      - विविध
    - पद
    - गीत
      - विविध
- गद्य
  - नाटक
    - नाटक
    - एकांकी
    - विविध
  - कथा साहित्य
    - उपन्यास
    - कहानी
  - गद्य के अन्य रूप
    - निबंध
    - संस्मरण
    - रेखाचित्र
    - रिपोर्ताज
    - आत्मकथा
    - जीवनी
    - आलोचना
    - डायरी
    - पत्र

नाटक

" पाणिनि नाट्य धातु की उत्पत्ति 'नट' धातु से मानी है।'' 64 रंगमंचीय साधनों द्वारा अभिनय के माध्यम से समाज में किसी उच्चादर्श की स्थापना करने वाली एक से अधिक अंकयुक्त दृश्यात्मक साहित्य-विधा को नाटक कहा जाता है। अगर दूसरी भाषा में कहें तो "रंगमंच'' पर अभिनय के द्वारा प्रस्तुत करने की दृष्टि लिखित गद्य-पद्य मिश्रित रचना को नाटक कहते हैं। नाटक का उद्भव भारतेन्दु युग से माना जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि " विलक्षण बात यह है कि आधुनिक गद्य साहित्य की परम्परा का पर्वतन नाटकों से हुआ।'' 65 कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक गद्य साहित्य की शुरुआत नाटकों से हुई जिनके जन्मदाता भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र हैं।

भारतेन्दु से पहले नाटक के नाम पर दो चार ग्रंथ ब्रजभाषा में लिखे गये थे उनमें महाराज विश्वनाथ सिंह का आनंद रघुनंदन नाटक को छोड़कर किसी में नाटकत्व नहीं था।'' 66 अर्थात् भारतेन्दु के पहले खड़ी बोली हिन्दी में कोई व्यवस्थित नाटक नहीं प्राप्त होता है परंतु ब्रजभाषा का नाटक प्राप्त है। गद्य रचना की शुरुआत में ही भारतेन्दु का ध्यान पहले खड़ी बोली नाटक पर ही गया। भारतेन्दु ने अपनी 'नाटक' नामक पुस्तक में लिखा है कि हिन्दी में मौलिक नाटक उनके पहले दो ही लिखे गये थे- महाराज विश्वनाथसिंह का 'आनंदरघुनन्दन' और बाबू गोपालचंद्र का 'नहुष' नाटक है।'' 67 ये दोनों नाटक ब्रजभाषा में हैं। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने सबसे पहले 'विद्यासुंदर नाटक का बंगला से हिन्दी में अनुवाद करके संवत 1925 में प्रकाशित किया।'' 68

अगर हम 18वीं-19 वीं सदी की सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों का विश्लेषण करें तो हमें यह पता चलता है कि उस समय पुनर्जागरण का काल चल रहा था। इस समय समाज परम्परागत हिन्दू एकांतिकता की भावना को छोड़कर सामजिकता की भावना पर बल देते हैं। इसलिए समाज में छुआछूत, सतीप्रथा, बालविवाह, बालकी को दूध पीती कराने का रिवाज आदि को दूर करने का प्रयास चल रहा था। स्त्री और पुरुष को समान दर्जा दिये जाने की लगातार वकालत हो रही थीं इसलिए विभिन्न संस्थाओं में विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम आयोजित किये जा रहे थे। इन संस्थाओं ने विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से लोगों में नई चेतना का संचार किया।

" नाटक अपनी प्रकृति से संशिलष्ट विधा है। भरतमुनि ने कहा है कि--ऐसा कोई ज्ञान है, न शिल्प है, न विद्या है, न ऐसी कोइ कला है, न कोई योग है और न कोई कार्य ही है जो इस नाट्य में प्रदर्शित न किया जा सके।, वह आज तक अपनी जगह है। नाटक के प्रस्तुतीकरण में अनेक

व्यक्तियों का योगदान है, नाटक-लेखक, निर्देशक, अभिनेता, सज्जा, सहायक, मंच, व्यवस्थापक, प्रकाश चालक और इनके पीछे कार्य करने वाले अनेक शिल्पी तथा कारीगर। नाट्य रचना में इन सबका गुणात्मक योगदान है। दूसरी ओर नाटक का आस्वाद भी अपनी प्रकृति में सामूहिक है। अनेक व्यक्ति एक साथ बैठकर देखते हैं इससे एक साथ बैठने में नाटक का प्रभाव बढ़ता है। नाटक देखनेवाले को इसलिए हमारे यहॉं नाम दिया गया-'सामाजिक'. तो नाटक अपनी रचना और आस्वाद दोनों सिरों पर सामूहिक तथा सामाजिक है। ऐसी स्थिति में पुनर्जागरण की मूल सामाजिक चेतना को व्यक्त करने के लिए यदि भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने नाटक के माध्यम को चुना तो युगीन परिस्थिति और काव्य के रूप के संबंध की उनकी सही समझ की हमें सराहना करनी होगी।'' 69

ये नाटककार न सिर्फ नाटक लिखते थे परन्तु उस नाटक को अभिनीत करते थे। " आधुनिक हिंदी का पहला अभिनीत नाटक शीतलप्रसाद त्रिपठी का 'जानकीमंगल माना गया है। जो 1868 में काशी में खेला गया और जिसमें लक्ष्मण का अभिनय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया। शंकुतला के अभिनय में प्रतापनारायण मिश्र का अपने पिता से मूँछ मुड़ाने के लिए आज्ञा मांगना प्रसिद्ध है।'' 70

भारतेन्दु के बाद कुछ समय तक नाटक आंदोलन गतिशील रहा परंतु सामाजिक कुरीतियों की वजह से मनुष्य की संकुचितता के कारण शिक्षण के अभाव के कारण यंत्रों के अभाव आदि के कारण नाटक धीरे-धीरे शिथिल हो गये। भारतेन्दु के समय तथा उसके बाद हिन्दी क्षेत्र में नाटक या तो व्यवसायिक पारसी मंडलियों द्वारा खेले जाते थे या इसके लिए कुछ प्रसिद्ध साहित्यिकारों ने रंगमंच की स्थापना की। पहला रंगमंच बंगला में बनाया गया, बाद में बम्बई में भी रंगमंच की स्थापना की गई। इस युग के नाटक एवं नाटककारों के नाम इस प्रकार हैं।

नाटककार

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

मौलिक नाटक

1.वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति 2. चंद्रवली 3. विषस्य विषमौषधम 4. भारत दुर्दशा 5. नीलदेवी 6. अंधेर नगरी 7. प्रेमयोगिनी 8. सतीप्रताप (अपूर्ण)

अनूदित नाटक

विद्यासुंदर, धनंजय विजय, पाखंड विडम्बन, कर्पूरमंजरी, मुद्राराक्षस, सत्यहरिश्चन्द्र, भारत जननी

प्रतापनारायण मिश्र

मौलिक नाटक

घूरे का लत्ता बीने, कनावन का डौल बांधे, समरूदार की मौत मनोयोग, वृद्ध भी, कलिकौतुक रूपक, संगीत शांकुतल, भारत दुर्दशा, हठी हमीर, गो संकट, कलि प्रभाव, जुआरी-खुआरी

बालकृष्ण भट्ट

मौलिक नाटक

कलिराज की सभा, रेल का विकट खेल, बालविवाह, चंद्रसेन

अनूदित नाटक

पद्यमावती, शर्मिष्ठा

पं. बदरीनारायण चौधरी

मौलिक नाटक

भारत सौभाग्य, प्रयाग, रामागमन, वैराग्य रहस्य, महानाटक (अपूर्ण)

लाला श्रीनिवासदास

रणधीर, प्रेममाहिनी, संयोगिता स्वंयवर

बाबू तोताराम

कीर्तिकेतु

पं. केशवराम भट्ट

सजपाद, सुंबल, समशाद, सौतन

पं. राधा चरण गोस्वामी

सुदामा नाटक, सती चंद्रवली, अमरसिंह राठौर

पं. अंबिका दत्त व्यास

गोसंकट

द्विवेदी युगीन नाटक और नाटककार

इस युग में किसी प्रसिद्ध चरित्र, तथा रामायण और महाभारत के केन्द्र विन्दु या उसके प्रमुख चरित्रों को लेकर नाटक लिखे गये।

नाटककार	नाटक
राधाचरण गोस्वामी	श्रीदामा

शिवनंदन सहाय	सुदामा
वनवारी लाल	कृष्णकथा कंसवध
नारायण सहाय	कंसवध
ब्रजनन्दन सहाय	उद्धव

रामचरित्र सम्बन्धित नाटक

नाटककार	**नाटक**
रामनारायण मिश्र	जनक बाड़ा
गंगा प्रसाद	रामाभिषेक
गिरधरलाल	राम वनयात्रा
नारायण सहाय	रामलीला

पौराणिक नाटक

नाटककार	**नाटक**
महावीर सिंह	नल दमयन्ती
गौचरण गोस्वामी	अभिमन्यु वध
सुदर्शनाचार्य	अनर्घ नलचरत्रि
बालकृष्ण भट्ट	वेणु संहार
हनुमन्तसिंह	सतीचरित्र
जयशंकर प्रसाद	करुणालय
माखनलाल चतुर्वेदी	कृष्णार्जुन युद्ध

इस प्रकार यह नाटक की परम्परा जो भारतेन्दु युग से चली आ रही है, वह आज भी देखी जा रही है।

एकांकी

" एकांकी का शाब्दिक अर्थ है- एक अंकवाला' यह नाटक के समान ही अभिनय कि संबंधित साहित्य की एक विधा है, जिसमें किसी घटना या विषय का एक अंग प्रस्तुत किया जाता है। यद्यपि आधुनिक युग में एकांकी के जिस रूप और शैली का प्रचलन हो रहा है, उसका विकास भारतीय साहित्य में भी एकांकी या उससे मिलते-जुलते रूपकों का प्रचार हो रहा है। नाटक के विभिन्न भेदों

में व्यायोग, प्रहसन, अंक, वीथी, नाटिका, गोष्ठी आदि में एकांकी की भॉति एक ही अंक होता है। अतः इन्हें प्राचीन ढंग के एकांकी कह सकते हैं।'' 71

हिन्दी मे एकांकी लेखन का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से माना जाता है। लेकिन इसके कुछ तत्व प्राचीन भी मिलते हैं। गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस को अलग-अलग खण्डों में देखा जाय और उसमें भी परशुराम-लक्ष्मण संवाद, केकेयी-मंथरा संवाद, अंगद-रावण संवाद आदि एकांकी का ही रूप है। केशव की रामचन्द्रिका, नरोत्तमदास के सुदामाचरित्र में से भी हम ऐसे दृश्य निकाल सकते हैं।

" हिन्दी में प्राचीन ढंग के गद्य बद्ध एकांकियों का आरम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा हुआ। उन्होंने प्राचीन संस्कृत-नाट्य साहित्य से प्रेरणा ग्रहण करते हुए नाटक व एकांकी के विभिन्न रूपों के विकास का प्रयत्न किया। उन्होने धनंजय विजय (व्यायोग का अनुवाद) प्रेम योगिनी (अपूर्ण-मौलिक) पाखंड विडम्बन (अनूदित) अंधेरनगरी (प्रहसन) आदि की रचना की जिनमें प्राचीन ढंग के एकांकियों के लक्षणों का निर्वाह हुआ है। अपने इन एकांकियों में जहॉ उनका लक्ष्य कला का विकास करना था वहीं दूसरी ओर जनता का ध्यान तत्कालीन समस्याओं की ओर आकर्षित करना भी था। उनके प्रहसनों में विभिन्न रूढ़ियों, रीतिरिवाजों, सामाजिक एवं राष्ट्रीय बुराइयों पर तीखा प्रहार करना भी था। विदेशी सरकार की खबर भी यत्र-तत्र ली गई।'' 72

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अलावा अन्य कई लेखकों ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया जिनमें रामकुमार वर्मा, डॉ. महेन्द्र, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', भुवनेश्वर प्रसाद, उदयशंकर भट्ट आदि का नाम मुख्य है।

उपन्यास

" उपन्यास-यह शब्द उप-समीप तथा न्यास -थाती के योग से बना है। जिसका अर्थ हुआ (मनुष्य के) निकट रखी हुई वस्तु या कृति, जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है।, इसमें हमारे जीवन का प्रतिबिम्ब है, इसमें हमारी ही कथा हमारी ही भाषा में कही गई है।'' 73

उपन्यास शब्द का मूल अर्थ है-' निकट रखी हुई वस्तु।' पात्रों के चरित्र-चित्रण संवाद, घटनाक्रमों एवं भावानात्मक अभिव्यक्तियों के माध्यम से किसी कथावस्तु का सर्वांगीण, उद्देश्यपूर्ण एवं कलात्मक प्रस्तुति को उपन्यास कहा जाता है।

" उपन्यास गद्य का नव विकसित रूप है जिसमें कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, संवाद आदि के तत्वों के माध्यम से यथार्थ और कल्पना मिश्रित कहानी आकर्षक शैली में प्रस्तुत की जाती है। यद्यपि आधुनिक उपन्यास साहित्य के रूप विधान का विकास सबसे पहले यूरोप में माना जाता है। किन्तु

इसका यह तात्पर्य नहीं है कि प्राचीन भारत में उपन्यास जैसी किसी विधा का प्रचार नहीं रहा। संस्कृत गद्य में लिखे गये पंच-तंत्र, हितोपदेश, बैताल पच्चीसी, बृहदकथा मंजरी, वासवदत्ता, कादम्बरी और दशकुमार चरित्र मे हमें क्रमश: औपन्यासिकता का विकास मिलता है।'' 74 इन उपन्यासों का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि जिनमें अस्वाभिकता आ गई है। अत: यह उपन्यास आधुनिक उपन्यास से काफी भिन्न है।

" कुछ विद्वानों ने 'कादम्बरी' को भारत का पहला उपन्यास मानस है। यहॉ तक कि मराठी साहित्य में उपन्यास का पर्यायवाची ही कादम्बरी है किन्तु हमारे विचार से ठीक नहीं। कादम्बरी में अलौलिकता भावात्मकता एवं अलंकारकिता का आग्रह इतना अधिक है कि उस उपन्यास कहना उपन्यास शब्द का अन्याय होगा। वस्तुत: मानवीय चरित्र के स्वाभाविक चित्रण, मनोवैज्ञानिक तथ्यों के उद्घाटन यथार्थवादी दृष्टिकोण एवं शैली की स्वाभाविकता की दृष्टि से 'दशकुमार चरित्र' को हम भारत का पहला सफल उपन्यास कह सकते हैं। इसमें अनेक स्वतन्त्र कथानकों को मूल कथावस्तु के क्षीण तन्तुओं के द्वारा परस्पर सम्बद्ध किया गया है जो आधुनिक उपन्यास की दृष्टि से इसका यह एक बड़ा भारी दोष है, किन्तु अन्य गुणों को देखते हुए यह दोष उपेक्षणीय कहा जा सकता है।''75

उपन्यास मानव जीवन का वह स्वच्छ और यथार्थ गद्यमय चित्र है जिसमें मानव-मन के प्रसाधन की अद्भुत शक्ति के साथ-साथ उसके रहस्यों के उद्घाटन तथा उसके उन्नयन की विचित्र क्षमता भी होती है। हिन्दी में उपन्यास का आरम्भ कब हुआ इसका निश्चित उत्तर देने के लिए हमें पहले यह देखना होगा कि हिन्दी का पहला उपन्यास कौन सा है ?

" हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास कौन सा है, इस पर कुछ विवाद रहा है। हिन्दी उपन्यास कोश के संपादक गोपालराय का मानना है कि यह स्थान पंडित गौरीदत्त द्वारा लिखित 'देवरानी-जेठानी' की कहानी को मिलाना चाहिए जिसका प्रथम प्रकाशन 1870 में हुआ। कुछ आलोचक श्रद्धाराम फुल्लौरी द्वारा रचित 'भाग्यवती' को हिन्दी का पहला उपन्यास मानते हैं जिसकी रचना तो 1877 में हुई पर जिसका प्रकाशन दस वर्ष बाद 1887 में हुआ। रामचन्द शुक्ल ने अपने इतिहास में लाला श्री निवास दास कृत उपन्यास परीक्षा गुरू को पहला मौलिक उपन्यास माना है। जो 1882 में प्रकाशित हुआ। इनमें से देवरानी जेठानी की कहानी के विधान को लेकर यह विवाद बना हुआ है कि इसे उपन्यास कहा जाए या एक लंबी कथा। 'भाग्यवती' की रचना भले ही 1877 में हुई हो पर प्रकाशन उसका 1887 में माना जाता है। 'परीक्षा गुरू' को रामचंद्र शुक्ल ने अपनी चिर परिचित सावधान शैली में अंग्रेजी ढंग का उपन्यास कहा है, जो पहले पहल हिन्दी में निकला। अंग्रेजी ढंग का उपन्यास कहने से

स्पष्ट है कि आचार्य शुक्ल चरित्र-चित्रण प्रधान संशिलिष्ट कथानक पर आधारित कृति की ओर संकेत कर रहें हैं जो परीक्षागुरू में मूलत: है।'' 76 यानी हम कह सकते हैं कि हिन्दी का पहला उपन्यास लाला श्रीनिवासदास का परीक्षागुरू है।

इसके बाद तो कई उपन्यास रोमानी उपन्यास, घटना प्रधान उपन्यास, तिलस्मी उपन्यास, ऐयारी उपन्यास, जासूसी उपन्यास, ऐतिहैसिक उपन्यास, भावप्रधान उपन्यास, आदर्शोन्मुख उपन्यास, यथार्थवादी उपन्यास आदि नये ढंग के उपन्यास प्रकाश में आए। प्रमुख उपन्यासकारों के नाम इस प्रकार हैं--- यथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, श्रद्धाराम फुल्लौरी, श्री निवासदास, प्रेमचद, बालकृष्ण भट्ट, किशोरीलाल गोस्वामी, अयोध्याप्रसाद उपध्याय, देवदत्त, बालमुकुन्द गुप्त आदि।

कहानी

कहानी का शाब्दिक अर्थ है- कहना। कहानी उस गद्य रचना को कहते हैं जिसमें पात्रों के चरित्र'चित्रण एवं भाव या गुण के माध्यम से मानव समाज के किसी आदर्श, चरित्र भाव या गुण विशेष को संक्षिप्त और कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

" गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं में कहानी एक लोकप्रिय विधा है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में यह रूप बंगला के माध्यम से पाश्चात्य साहित्य से आया है। अंग्रेजी में इसे शार्ट स्टोरी कहते हैं। वही बंगला में गल्प और हिन्दी में कहानी नाम से प्रचलित है।'' 77

कहानी उपन्यास से पुरानी विधा है। गीत और कहानी मानव समाज के साक्षरता काल के पहले से जुड़े हुए हैं। कहानी में कहने की विशेषता महत्वपूर्ण रहती है। कहानी एक छोटी विधा है जहॉ एक व्यक्ति के प्रसंग के बारे में लिखा जाता हे और जिसे एक बैठक में पढ़ी जाती है।

" आधुनिक कहानी का आरम्भ यूरोप के विभिन्न लेखक समूहों के द्वारा 19 वीं सदी में हुआ था। इस लेखक समूह में सर्वप्रथम उल्लेखनीय हैं जर्मनी के ई. टी. डब्ल्यू हौफमैन, जिनके कहानी संग्रह 1814 और 1824 के बीच प्रकाशित हुए। दूसरी ओर जैकब और विल्हेल्मग्रिम ने परियों और पुराणों की कथाओं के संग्रह इसी काल में प्रकाशित करवाये।'' 78

धीरे -धीरे कहानी का प्रवाह यूरोप से होते हुए अंग्रेजी और बंगला के माध्यम से 20 वीं सदी के आरम्भ में हिन्दी में पहॅुचा। यहॉ हमें प्राचीन कहानी और आधुनिक कहानी के अन्तर को स्पष्ट कर लेना चाहिए। प्राचीन कहानियों का क्षेत्र इतना व्यापक होता था कि उसमें पशु-पक्षियों तक को भी पात्रों के रूप में समावेश कर लिया जाता था। किंतु आधुनिक कहानी मनुष्य मात्र तक सीमित रह गई। दूसरे प्राचीन कहानियों में राजा-रानी, सेठ-सेठानी आदि के जीवन की काल्पनिक घटनाओं का

वर्णन अधिक होता था जबकि आधुनिक कहानी में जन साधारण के जीवन की यथार्थ परिस्थितियों का अंकन अधिक मिलता है। प्रचीन कहानियों में पात्रों के चरित्र का विश्लेषण नहीं होता था। वस्तुत: प्राचीन कहानी में अलौकिकता, अस्वभाविकता, आदर्शवादिता एवं काल्पनिकता का आग्रह अधिक था ,जबकि आधुनिक कहानी में लौकिकता, स्वाभाविकता, यथार्थवादिता एवं काल्पनिकता पर अधिक बल दिया गया। प्राचीन कहानी स्वर्ग-लोक की कल्पना थी जबकि आधुनिक कहानी हमें धरती के सुख-दुख का स्मरण कराती है।

कहानी को गल्प, आख्यायिका और कला के नाम से भी जाना जाता है। अच्छी कहानी के भी कुछ गुण आचार्यों ने बताए हैं- जैसे कहानी संक्षिप्त होनी चाहिए, कहानी में मौलिकता का समावेश होना चाहिए। कहानी मार्मिक होनी चाहिए। कहानी का उद्देश्य पाठक का मनोरंजन करना तथा गौण उद्देश्य किसी संदेश की सांकेतिक अभिव्यक्ति हो। कहानी की भाषा सरल तथा शैली रोचक हो। उपर्युक्त सारे गुण ही कहानी को एक अच्छी कहानी बनाते हैं।

" हिन्दी गद्य में कहानी शीर्षक से प्रकाशित होने वाली सबसे पहली रचना 'रानी केतकी की कहानी' है। जो सन् 1803 में इंशाअल्ला खॉ द्वारा लिखी गई। इसके बाद राजा शिवप्रसादसितारे हिन्द का 'राजा भोज का सपना', भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न', का उल्लेख किया जा सकता है। जिसमें कहानी की भी रोचकता मिलती है। आधुनिक ढंग की कहानियों का आरंभ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'सरस्वती प्रत्रिका के प्रकाशन काल से माना है। उन्होंने प्रारम्भिक कहानियों का विवरण इस प्रकार दिया है। इंदुमती- किशोरीलाल गोस्वामी (1900), गुलबहार- किशोरीलाल गोस्वामी (1902), प्लेग की चुड़ैल- मास्टर भगवान दास (1902) ग्यारह वर्ष का समय- रामचन्द्र शुक्ल (1903) पंडित और पंडितानी- गिरिजा दत्त वाजपेयी (1903) दुलाई वाली-बंगमहिला (1907) आदि सभी कहानियॉ सरस्वती में प्रकाशित हो गई है। इस प्रकार हिन्दी के प्रथम कहानीकार के रूप में किशोरीलाल गोस्वामी का नाम लिया जाना चाहिए।'' 79

इसके अलावा भी हिन्दी साहित्य में कई ऐसे महान साहित्यकार हो गए है जिन्होंने कहानी साहित्य को अमर कर दिया है। उनके नाम इस प्रकार हैं -- जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, विश्वम्भर शर्मा 'कौशिक' सुदर्शन, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' , आचार्य चतुरसेन शास्त्री आदि।

निबंध

" इसका अर्थ है - नि+ बन्ध (बांधना) + घञ् (संग्रह) रोकना (वाचस्वयम)

या { नि + बन्ध (बांधना) + अच् } नीम का वृक्ष और उसके सेवन से कुष्ठ रोग खत्म होता है।(जटाधर)

याज्ञवल्क्य स्मृति में निबंध (निबंधो द्रव्यमेव) द्रव्य के लिए प्रयुक्त हुआ है। हेमचन्द्र ने संग्रह-ग्रन्थ सूत्ररोधरूप रोग, बन्धन के अर्थ में इसका प्रयोग किया है।

गीता में (निबंधासुरी मता, 16/5) भी यह बांधने की क्रिया के अर्थ में आया है। निबन्ध का प्रयोग लिखे हुए भोजपत्रों को संवारकर बांधने या सीने की क्रिया के लिए भी होता था। किन्तु कालान्तर में अर्थ संकोच के रूप में केवल साहित्यक कृति के लिए इसका प्रयोग किया जाने लगा।'' 80

निबन्ध गद्य साहित्य का अत्यंत ही शक्तिशाली एवं रोचक रूप विधान है। गद्य लिखने के लिए भाषा में व्यंजना, प्रौढ़ता होनी चाहिए तभी आप गद्य लिख सकते है। गद्य जिस प्रकार कवियों की कसौटी है उसी प्रकार बहुत जरूरी है। इसलिए निबंध की लिखने की शुरुआत बहुत पुरानी नहीं है। यह एक बहुत आधुनिक गद्य का प्रकार है। कुछ लोगों का मानना है कि निबंध का प्रारम्भ भारतेन्दु से भी पहले हुआ था। " उनकी राय में सदासुखलाल की रचनाओं में प्राथमिक तत्व का आभास मिलता है और वे उनके 'सुरासुर निर्णय' शीर्षक रचनाओं के उदाहरण के तौर पर पेश करते हैं। किंतु रूप और तत्व की दृष्टि से निबंध का आज जो सवरूप है, उसके अनुसार इसके विकासक्रम का आदि बिंदु वह रचना है, यह निर्विवाद नहीं। सच तो यह है कि काव्य नाटक, कथा, आख्यायिका आदि तो हिन्दी को विरासत में संस्कृत से मिल गये। किंतु निबंध पूर्णतया हिन्दी की स्वार्जित संपत्ति है। यह सर्वथा खड़ी बोली गद्य की देन है। साथ ही इसकी प्रेरणा पश्चिमी है।

निबंध में बुद्धितत्व अथवा विचारों की प्रचुरता रहती है। हिन्दी में निबंधों की अवतारणा संस्कृत के आदर्शों पर न होकर यद्यपि पाश्चात्य प्रभाव से हुई, तथापि हिन्दी निबंधों ने संस्कृत से कुछ बातें ग्रहण की है। अगर हमें निबंध की परिभाषा देनी हो तो कह सकते हैं कि---" निबंध एक ऐसी सीमित गद्य रचना है जिसमें कार्यकारण की श्रृंखला के साथ विचार निबंध होते हैं और उन विचारों में व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप होती है।'' 81

अगर हम सरल भाषा में कहे तो 'वह गद्य रचना जिसमें विचारों को भली भॉति बांधकर एक क्रम में प्रस्तुत किया जाए वह निबंध है।'' साहित्य सृष्टि की परम्परा दृष्टि से अगर हम निबंध का स्थान देखना चाहे तो वह इस प्रकार दर्शाया जा सकता है।

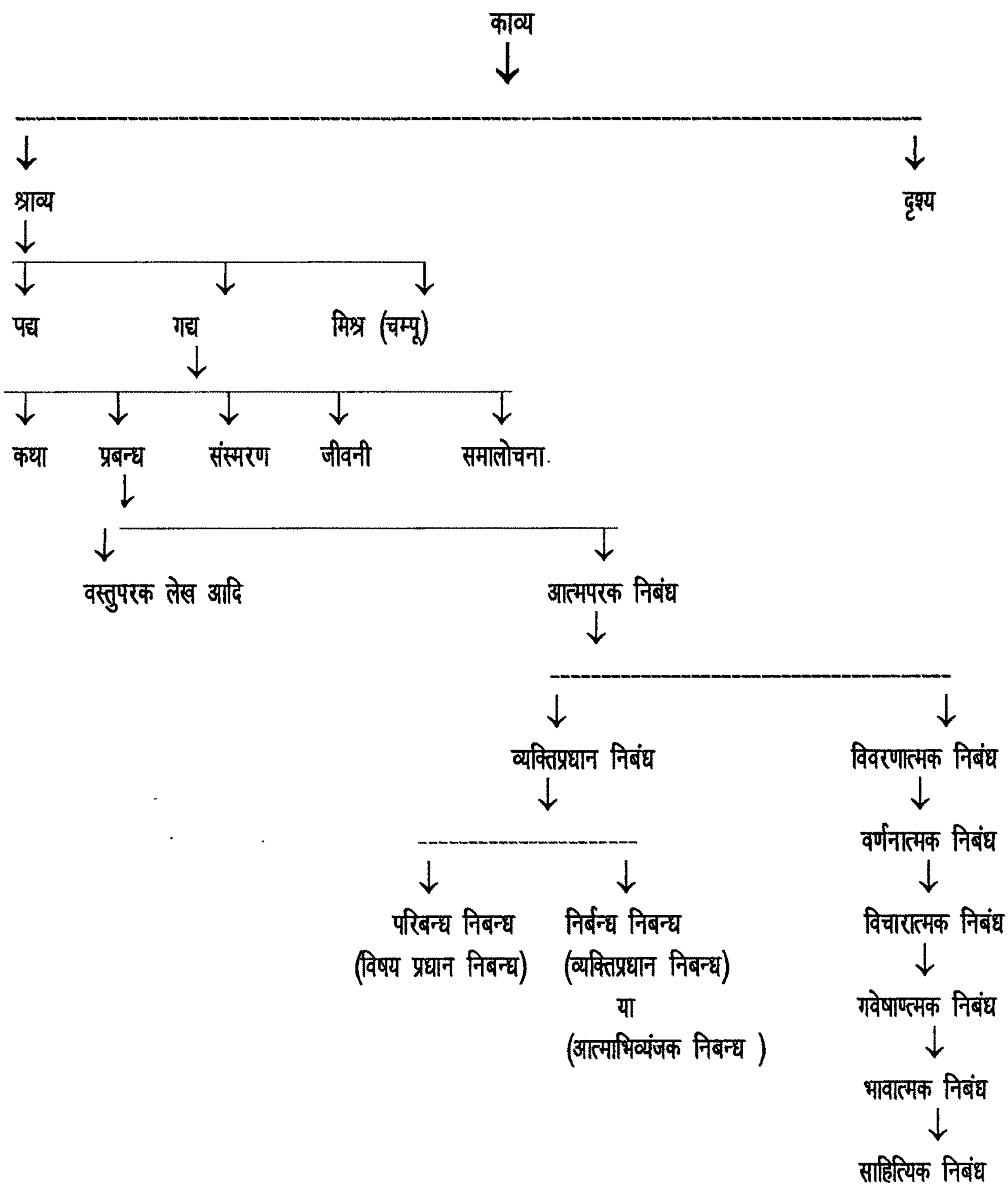
काव्य
श्राव्य
दृश्य
पद्य
गद्य
मिश्र (चम्पू)
कथा
प्रबन्ध
संस्मरण
जीवनी
समालोचना
वस्तुपरक लेख आदि
आत्मपरक निबंध
व्यक्तिप्रधान निबंध
विवरणात्मक निबंध
वर्णनात्मक निबंध
परिबन्ध निबन्ध
(विषय प्रधान निबन्ध)
निर्बन्ध निबन्ध
(व्यक्तिप्रधान निबन्ध)
या
(आत्माभिव्यंजक निबन्ध)
विचारात्मक निबंध
गवेषाण्त्मक निबंध
भावात्मक निबंध
साहित्यिक निबंध

निबंध में संक्षिप्तता, बुद्धितत्व का संयोग, पूर्णता क्रमबद्धता, व्यक्तित्व की छाप, रोचकता आदि गुणों का होना आवश्यक होता है। " निबंध में विषय का महत्व नहीं होता, न ही विषय के प्रतिपादन का महत्व होता है। विषय और उसका प्रतिपादन कैसा भी हो उसमें निबंधकार अपनी मनमानी स्वछन्दता से काम ले सकता है। किंतु उसका आत्म-चिन्तनपरक, सुनिबद्ध और स्थापत्वपूर्ण होना आवश्यक है। आवश्यक है कि उसमें सहृदयता हो, रस की दृष्टि हो, संभाषण की पटुता हो और रोचकता लाने वाली सरलता हो। ये सारे गुण वही है जो रचनात्मक साहित्य या सृष्टि के होते हैं। 82

किसी भी भाषा के साहित्य में निबंध का उदय बहुत बाद में हुआ है। --" हिन्दी में निबंधों की नींव भारतेन्दु युग में पड़ी। साथ ही हम यह भी स्वीकार करेंगे कि शैली और विषय आदि की दृष्टि से उस आदि युग में ही जिस हद तक निबंध रचना की छटा छिटकी, विकासक्रम में उस गति और परम्परा का आगे निर्वाह न हो सका। अंग्रेजी शिक्षा के सम्पर्क में आकर उस युग के साहित्यकारों ने अंग्रेजी साहित्य में गद्य का एक ऐसा अभिनव विधान देखा गया जो हिन्दी में नहीं था। उस गद्य विधान की यह विशेषता उन्हें अनुकूल प्रतीत हुई कि उसके द्वारा अपनी बात सीधे दूसरों तक पहुंचाई जा सकती है एवं उसमें प्रभावोत्पादकता है। चूंकि भारतेन्दु युग के पहले साहित्य की दुनिया में काव्य साधना की ही प्रधानता थी। इसलिए इन साहित्यकारों की दृष्टि गद्य की ओर ही थी। इस प्रकार गद्य साहित्यकों की दृष्टि विशेषकर गद्य की खूबियों ने उन्हें आकर्षित किया और लोगों ने इस पद्धति को अपनाया। सौभाग्य से इस नये प्रकार की प्रतिष्ठा के लिए पत्र-पत्रिकाओं उपयुक्त साधन भी उपलब्ध हो गये। पत्र-पत्रिकाएं भी उस युग में ऐसी मिली जिनकी मूल प्रेरणा साहित्यक थी। कारण और सुविधा के कारण उस युग में निबंधों के निर्माण का श्रीगणेश हुआ।'' 83

हिन्दी के प्रथम निबंधकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही थे तथा हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार आ. रामचन्द्र शुक्ल है। इनके अलावा कई अन्य लेखकों ने भी इस क्षेत्र में अपना योगदान दिया। जिनमें बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी, प्रेमघन, लाला श्री निवासदास, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाबू गुलाबराय, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, रामविलास शर्मा आदि मुख्य हैं।

रिपोतार्ज

" रिपोतार्ज फ्रांसीसी भाषा का शब्द और अंग्रेजी शब्द रिपोर्ट से इसका गहरा संबंध है। रिपोर्ट किसी घटना के यथातथ्य साध्य वर्णन को कहते हैं। रिपोर्ट सामान्यत: समाचारपत्र के लिए लिखी जाती है

और उसमें साहित्यकता का अभाव होता है। रिपोर्ट के कलात्मक और साहित्यक रूप को ही रिपोतार्ज कहते है। वस्तुगत तथ्य को रेखाचित्र की शैली में प्रभावोत्पादक ढंग से अंकित करने में ही रिपोतार्ज की सफलता है।'' 84

रिपोतार्ज में आंखों देखी घटनाओं और कानो सुनी बातों का प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया जाता है। यहाँ कल्पना शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाता है। तथ्य रिपोर्ट से मात्र एक घटना का पता चलता है, परंतु रिपोतार्ज नहीं बनता है इसके लिए रिपोतार्ज को कथात्मकता का गहरा परिचय होना चाहिए। रिर्पोतार्जकार पत्रकार तथा कलाकार दोनों की जिम्मेदारी निभाता है। रिपोतार्ज को साधारण जनजीवन का भी सच्चा ज्ञान होना चाहिए तभी वह प्रभावशाली रिर्पोतार्ज की रचना कर सकता है। रिपोतार्ज का प्रदुरभाव सन् 1936 के आसपास द्वितीय विश्वयुद्ध के समय हुआ था हिन्दी में रिपोतार्ज मूलत: विदेशी साहित्य के प्रभाव से शुरू हुआ। हिन्दी में रिर्पोतार्ज लेखन की परम्परा शिवदानसिंह चौहान ने लक्ष्मीपुरा से प्रारम्भ की जो रूपाभ पत्रिका में 2 दिसम्बर 1938 में प्रकाशित हुई थी। इनके अलावा सर्वश्री प्रकाशचन्द्र गुप्त, रांगेय राघव, प्रभाकर माचवे, अमृतराय ने भी इस परम्परा को आगे बढ़ाने में अपना सहयोग दिया।

आत्मकथा

जिस गद्य साहित्य में लेखक अपने जीवन की स्मरणीय घटनाओं का क्रमबद्ध वर्णन एवं विश्लेषण करता है, उसे आत्मकथा कहते है। " आत्मकथा लेखक के अपने जीवन से सम्बद्ध वर्णन है। आत्मकथा के द्वारा अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठिभूमि में अपने जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख करता हे। डायरी, संस्मरण, पत्र आदि आत्मकथा के ही अन्तर्गत आते हैं। इन्हें व्यक्तिगत प्रकाशन-पर्सनल रिलेशन वाले साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है। क्योंकि इसमें जाने अनजाने आत्मांकन करना ही इन विविध रचना प्रकारों का उद्देश्य होता है।'' 85 आसान शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि किसी व्यक्ति द्वारा लिखी गई स्वयं अपनी जीवनी' आत्मकथा' है।

" जैनकवि बनारसीदास अर्धकथा हिन्दी की प्रथम आत्मकथाओं में गिनी जाती है। हिन्दी के प्राचीन साहित्य में आत्मकथात्मक सामग्री भी पत्र तक मिलते है। सुनिश्चित और व्यवस्थित आत्मकथाओं के लिखे जाने का तो खैर प्रचलन ही न था। आधुनिक युग में साहित्यक के युग अन्य गद्य रूपों के साथ, आत्मकथा की ओर भी लेखकों का ध्यान गया। स्वयं भारतेन्दु ने कुछ आप बीती कुछ जग बीती' नाम से आत्मकथा लिखना प्रारम्भ किया था।'' 86

बाद में कई लेखकों ने आत्मकथा लिखी और अपने-अपने ढंग से इसको आगे बढ़ाने क प्रयास भी किया। जिसमें मुख्य रूप से श्यामसुन्दरदास, राजेन्द्रप्रसाद, राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, महात्मागांधी, जवाहरलाल नेहरू, भगवानदासजी सन्यासी आदि का नाम अग्रगण्य है।

जीवनी

" किसी व्यक्ति विशेष के जीवन वृतान्त को जीवनी कहते हैं। जीवनी का अंग्रेजी पर्याय 'लाइफ' अथवा 'बायोग्राफी' है। हिन्दी में जीवनी को 'जीवन चरित' भी कहा जाता है। इनमें मौलिक अन्तर नहीं जान पड़ता है। जीवन-चरित्र कालान्तर में किंचित शुद्ध होकर जीवन-चरित्र बन गया और इसी का आधुनिक एक संक्षिप्त रूप जीवनी अब अधिक प्रचलित हो गया। जीवन-चरित्र में निहित दोनों शब्दों को अलग करे तो जीवन के अन्तर्गत स्थूल बाह्य घटनाओं को और चरित्र के अन्तर्गत चरित्र नायिका की आन्तरिक विशेषताओं को भी ले सकते हैं। इस प्रकार जीवन-चरित्र अन्तर्बाह्य दोनों ही जीवनों का लेखा होता है।'' 87

जीवन चरित्र या जीवनी में व्यक्ति के सारे जीवन में किसी के किए हुए कार्यो का वर्णन होता है। उसमें नायक के सम्पूर्ण जीवन या यथेष्ट भाग की चर्चा होनी चाहिए। लेकिन यह कोई नियम नहीं है। लेखकों को जीवन की रचना आदर्श रूप से करनी चाहिए ताकि यह जीवनी एक विशिष्ट इतिहास बन सके। इसमें कल्पनाओं का केोई स्थान नहीं होता है। यहॉ मात्र तथ्यों को उद्घाटित किया जाता है। वह भी भाषा शैली से। जीवनी साहित्य हमें प्राचीनकाल में ठोस पूर्ण कृतियों के साथ नहीं मिलती तथा उनमें कई गुण दोष भी है। इसलिए वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो जीवनी का आरम्भ आधुनिक काल में हुआ।

" हिन्दी में अपेक्षाकृत आधुनिक रीति से जीवनियों का लिखा जााना लगभग 1882 से प्रारम्भ होता है। कार्तिक प्रसाद खत्री ने 1893 में मीराबाई का जीवन चरित्र लिखा।'' 88 इसके बाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राधाकृष्ण दास, मुंशी देवीप्रसाद आदि ने भी जीवनी लेखन का कार्य किया।

आलोचना

" आलोचना शब्द 'लोच' (पाणिनि की शब्दावली में उन्होंने इस लोच कहा है) से बना हुआ है- यथा आ+लोच+अन+आ = आलेचना, अथवा आ+ लोचृ(अन्) + आलोचना, लोच या लोष्ठ का अर्थ है देखना, इसलिए किसी वस्तु या कृति की सम्यक व्याख्या उसका मूल्यांकन आदि करना ही आलोचना है। आलोचना किसी कवि या लेखक की कृति को देखता या परखता है।'' 89 हम दूसरे अर्थ में यह कह सकते हैं कि किसी वस्तु या कृति की सम्यक व्याख्या तथा उसका मूल्यांकन आदि करना ही

आलोचना है। प्रयोजनों एवं पद्धतियों की दृष्टि से आलोचना के दो भेद है - 1.साहित्यक समीक्षा तथा 2. वैज्ञानिक समीक्षा।

साहित्यक समीक्षा में समीक्षक का लक्ष्य व्यक्तिगत दृष्टि से कृति के सम्बन्ध में निजी अनुभूतियों, धारणाओं एवं मूल्यों को कलात्मक शैली में प्रस्तुत करने के पक्ष में होता है। जबकि वैज्ञानिक समीक्षा में वस्तुगत दृष्टि से कृति का प्रमाणिक विवेचन करते हुए उसके संबंध में सन्तुलित निर्णय देना होता है। साहित्यक समीक्षा के तीन उपभेद होते हैं -- 1. ऐतिहासिक 2. सैद्धान्तिक 3. व्यावहारिक।

" हिन्दी में आलोचना का वास्तविक प्रारम्भ बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन' ने किया। उन्होंने ' आनन्द कादिम्बनी' पत्रिका (1882) में लाला श्रीनिवासदास रचित 'संयोगिता स्वयंवर' का नाट्य दोष दिखलाकर और गदाधर सिंह द्वारा अनुवादित 'बंग-विजेता' के भाषा सम्बन्धी दोषों का निर्देश कर आलोचना की।'' 90 इसके बाद तो भारतेन्दु हरिश्चन्द, बालकृष्ण भट्ट, जगन्नाथ प्रसाद भानु, लाला भगवानदीन आदि ने आलोचना साहित्य को बढ़ावा दिया।

डायरी

" डायरी सीमित अर्थ में तो कापी, नोटबुक या पुस्तिका है, जिसमें हर रोज की घटनाओं का या दिन भर में किये गये कार्यों का लेखा-जोखा रखा जाय, पर प्रचलित अर्थ में डायरी दैनिक व्यापारों या घटनाओं का ब्यौरा है। डायरी में लोग अपने कुछ या सब अनुभवों तथा निरीक्षणों का दैनिक विवरण रखते हैं।'' 91 यानी कि डायरी वह गद्य विधा है जिसमें लेखक तिथि एवं क्रमानुसार अपने जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं और उनके प्रभाव को अपनी प्रतिक्रिया के साथ उल्लिखित करता है। डायरी के माध्यम से लेखक अपने मन में उत्पन्न होने वाले विचारों भावों, मन:स्थितियों को अभिव्यक्त कर सकता है। डायरी में दिन-प्रतिदिन का दिनांक, घटना, दैनिक क्रिया आदि का होना आवश्यक है। क्योंकि यही गुण यह संकेत करता है कि लेखक उस घटना से उस समय कितने प्रभावित हुए थे। उनकी मन: स्थिति हमें उनकी डायरी में साफ दिखाई देती है। डायरी में व्यक्ति के जीवन के सभी पल शब्दों में कैद किये जाते हैं। इसमें व्यक्ति अपने निजी जिन्दगी के बारे में भी लिखता है। इससे ऐसा लगता है कि व्यक्ति अपनी निजी जिन्दगी को पुस्तक के माध्यम से नहीं रखना चाहता है, जिससे वह लोगों के सामने प्रकट हो। विशुद्ध डायरी पुस्तक के रूप में प्रकाशित नहीं की जाती और जो प्रकाशित होती है, वह संभवत: विशुद्ध डायरी नही होती है।

" साहित्यक दृष्टि से डायरी में सम्बद्धता या संगति और शिल्पगत कलाम्मकता की कमी हो सकती है, पर स्पष्ट कथन, आत्मीयता और निकटता आदि विशेषताएं डायरी की उक्त कमियों को पूरा कर देती हैं। डायरी आत्मकथा का ही एक बदला हुआ रूप है। डायरी में सामान्यत: ताजे अनुभवों को लिखा जाता है या सम्भव है कि कभी-कभी बीते हुए अनुभवों का पुनर्मूल्यांकन कर लिया जाता है।'' 92

हिन्दी में डायरी साहित्य का इतना विकास नहीं मिलता फिर भी महादेव नरहरि पारीख, बालमुकुन्द, झाबरमल शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि ने डायरियॉ लिखी है। तथा इस विधा को आगे बढ़ाया। मोहन राकेश ने इस विधा को हिन्दी साहित्य में एक उच्च स्थान दिलाया है।

पत्र-पत्रिकाएॅं

" हिन्दी में अखबार को समाचार पत्र और विविध प्रकार की मैगजीनों को साहित्यक पत्र, धार्मिक पत्र, राजनीतिक पत्र, आदि कहा जाता है। अखबारों- मैगजीनों के साथ पत्र शब्द जोड़ देने के कारण सम्भवत: यह होगा कि पत्र अर्थात 'लेटर' किसी बात को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक या एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुॅंचाने का माध्यम है। पत्र शब्द का प्रयोग प्रस्तुत सन्दर्भ में लेटर के ही अर्थ में किया जा रहा है। जब एक व्यक्ति के पास कोई प्रत्यक्ष सन्देश भेजे तो तो उसे पत्र कहेंगे।'' 93

आधुनिक युग में पत्र लिखित होते हैं जो डाक द्वारा भिजवाएं जाते हैं। पहले के जमाने में डाक नही था तब एक राजा दूसरे राजा तक या एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति तक अपना सन्देश भेजना चाहता था तो उसे मध्यस्थता का सहारा लेना पड़ता था। यह मध्यस्थ सन्देशवाहक, पत्रवाहक, दूत या कासिद होता था। ये सन्देश पाने वाले को सन्देश पढ़कर सुनाता था। यहॉ पर पत्र या सन्देश में वह आत्मीयता नही रह जाती थी कारण कि वह जिस भाव से लिखवाया जाता था, उस भाव द्वारा किसी दूसरे का पढ़ा जाना संभव नहीं था। वह पत्र मात्र औपचारिकता बन गई थी। सभी पत्र निजी नहीं होते थे, कई पत्र तो सबके सामने पढ़े जाते थे। इस पत्र का उद्देश्य यह होता था कि सभी लोग इसे पढ़े और जाने। इन पत्रों में या तो उपदेश होता है या किसी विषय का विवेचन होता है।

" डेमेट्रियस के अनुसार पत्र में मैत्रीपूर्ण भावना अन्तनिर्हित होनी चाहिए और शैली की दृष्टि से पत्र सच्चा, सरल, संक्षिप्त और सादा होते हुए भी भव्य होना चाहिए। मध्य युग में पश्चिम में पत्र-लेखन को लेकर काफी साहित्य रचा गया मैत्रीपूर्ण भावना और शैली के स्थान पर पत्र में वक्तृत्व कला और अलंकरण को स्थान दिया जाने लगा, पत्र बोझिल और शैली प्रधान हो गये, क्योंकि पत्र

लिखते समय पत्र पानेवालों की मर्यादा का ध्यान रखना आवश्यक समझा जाने लगा। सन्तोष का विषय यह है कि आधुनिक समय में पत्र ने मैत्रीभाव और सादी शैली को पुन: अपनाकर अपना सम्बन्ध क्लासिकल परम्परा से जोड़ लिया है।'' 94

हिन्दी में बहुत कम साहित्य पत्र साहित्य के रूप में प्रकाशित हुए हैं, लेकिन कुछ पत्रिकाएं जैसे -- 'भारतमित्र', 'चॉद', 'हंस', 'सरस्वती', आदि में इन पत्रों का प्रकाशन होता है। हिन्दी का सबसे पहला समाचार पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' (सन् 1826 ई.) है।

हिन्दी में पत्रिकाओं के माध्यम से जिसे ख्याति मिली है उसमें बालमुकुन्द गुप्त के 'भारतमित्र' में प्रकाशित 'शिवसम्भु के चिट्ठे' और विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' द्वारा चॉद में प्रकाशित 'दूबे जी की चिट्ठी' प्रमुख हैं। इनके अलावा भी कई अन्य लेखकों ने भी अपने पत्रों को प्रकाशित करवाया है। 'पत्र' साहित्य को हिन्दी साहित्य में एक खास पहचान बनाने का श्रेय आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को जाता है।

संस्मरण

संस्मरण गद्य की एक आत्मनिष्ठ विधा है। संस्मरण लेखक अपने व्यक्तिगत जीवन तथा अपने सम्पर्क में आए हुए अन्य व्यक्तियों के जीवन के किसी पहलू पर अपनी स्मृति के आधार पर प्रकाश डालता है। व्यक्तिगत जीवन में मानव नित्य अनके व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है। साधारण व्यक्ति इन क्षणों को विस्मृत कर जाता है। किन्तु संवेदनशील कलाकार के अन्तर्पटल पर ये क्षण सदा-सर्वदा उसे आकूल बना देती है, तब संभरण साहित्य की सृष्टि होती है। सहज आत्मीयता तथा गम्भीरता से किसी व्यक्ति, घटना, दृश्य, वस्तु आदि का स्मरण करके उसका लेखन संभरण कहलाता है। इस प्रकार संस्मरण साहित्य की मूलाधार स्मृति है। संस्मरण वह गद्य विधा है जिसमें लेखक अपने जीवन में घटित घटनाओं का वर्णन अपनी अनुभूतियों और संवेदनाओं के माध्यम से करता है।

" हिन्दी में संस्मरण साहित्य के विकास में सुधा, सरस्वती, माधुरी तथा विशाल भारत आदि प्रत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। बालमुकुन्द गुप्त द्वारा 1907 में पं. प्रतापनारायण मिश्र पर लिखा गया संस्मरण हिन्दी का प्रथम संस्मरण है। हरिऔध द्वारा लिखित 'संस्मरण' पुस्तक उनके 15 महत्वपूर्ण संस्मरणों का संग्रह है। सन् 1929 तक इस विधा का पूर्ण विकास हो गया था। आचार्य रामदेव जी, इलाचन्द्र जोशी, वृन्दावनलाल वर्मा, रूपनारायण पाण्डेय, मोहनलाल महतो वियोगी, गोपालराम गहमरी, मुंशी नवर्जादक लाल इस समय के प्रमुख संस्मरण कार है। 95

इसके बाद 1937 में पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी कतिपय संस्मरण लिखे थे। उनके बाद तो पं. पद्मसिंह शर्मा (पद्मपराग) पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, (संस्मरण), श्रीराम शर्मा (बयालिस के संस्मरण), महादेवी वर्मा (अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ, पथ के साथी), आदि ने भी संस्मरण लेखन का कार्य किया है।

रेखाचित्र

रेखाचित्र गद्य की एक नवीन विधा है। अपनी व्यापक संवेदनशीलता और चारू कल्पनाशीलता के कारण यह सदस्यों का हृदयहार बन गई है। 'रेखाचित्र' अंग्रेजी के 'स्केच' का हिन्दी रूपान्तर है। इसके लिए 'व्यक्ति चित्र', 'शब्दचित्र', और 'व्यक्तिचित्र-लेख', आदि शब्द प्रयुक्त किये जाते है। हिन्दी के सुविख्यात रेखाचित्र रामवृक्ष वेनीपुरी इसे 'स्केच' ही कहना उपयुक्त समझते हैं, जबकि प्रकाशचन्द्र गुप्त तथा पं. बनारसीदास चतुर्वेदी इस 'रेखाचित्र' कहना अधिक समीचीन समझते हैं।

वस्तुतः 'रेखाचित्र' शब्द ही अब इस विधा के लिए रूढ़ हो चुका है। यह चित्रकला की एक शैली है। जिसमें रेखाओं द्वारा आकृति और उससे सम्बन्धित भावों तथा क्रियाओं का चित्रण किया जाता है। चित्रकला के 'स्केच' की भाँति ही गद्य की यह आधुनिक विधा 'रेखाचित्र' वस्तु, व्यक्ति या घटना का शब्दों द्वारा निर्मित वह मार्मिक भावमय रूपविधान है, जिसे कलाकार का भावप्रवण हृदय और उसकी सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि अपनी निजता से ऐसा जीवन्त बना देती है कि कालविशेष के लिए वह पाठक के सम्मुख मूर्तिमान हो जाता है। इस प्रकार रेखाचित्र किसी विशिष्ट व्यक्ति, स्थान अथवा उपादान की विशेषताओं का संक्षिप्त वस्तुगत विवरण होता है। इसका वैशिष्ट्य इसके विस्तार में नहीं अपितु तीव्रता में होता है।''
96

हिन्दी में स्वतन्त्र विधा के रूप में 'रेखाचित्र' का विकास अंग्रेजी और 'स्केच' के प्रभाव से आधुनिक काल में हुआ था। हिन्दी के प्रथम रेखाचित्र लेखक पं. पद्मसिंह शर्मा माने जाते हैं। 'महाकवि अकबर' पर लिखित उनके रेखाचित्र ने हिन्दी साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट किया। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी का प्रथम रेखाचित्र 'औरगंजेब' 1919 ई. में प्रकाशित हुआ। 1936 तक रेखाचित्रों का प्रकाशन पत्र-पत्रिकाओं तक सीमित रहा। बाद में सन् 1963 में हंस पत्रिका द्वारा रेखाचित्र विशेषांक के मौके पर 15 रेखाचित्र प्रकाशित हुए। 'मधुकर' का रेखाचित्र अंक पं. बनारसीदास चतुर्वेदी की सारगर्भित भूमिका के साथ 1946 में प्रकाशित हुआ। इन्दीं दो विशेषांको के प्रकाशन ने 'रेखाचित्र' को स्थिरता प्रदान की। इसके बाद पं. श्रीराम शर्मा,, पं. रामवृक्ष वेनीपुरी, महादेवी वर्मा, देवेन्द्र सत्यार्थी, वृन्दावनलाल वर्मा, निर्मल वर्मा आदि लेखकों ने भी इस विधा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

पद्य

प्रबन्ध काव्य

" प्रबन्ध काव्य श्रव्य प्रबन्ध काव्य का एक भेद है। वह पद्यबद्ध तथा सर्ग बद्ध कथात्मक काव्य होता है। पर कुछ प्रबन्ध काव्य सर्गो या अध्यायों में विभक्त नहीं होते है। वह कथा काव्य और इतिवृतात्मक कथा से भिन्न काव्य रूप है। केवल पद्य बद्ध, सर्गबद्ध अथवा रसात्मक होने से ही कोई काव्य प्रबन्ध काव्य नहीं हो जाता, क्योंकि इतिहास-पुराण, दर्शन और शास्त्र के ग्रन्थ भी पद्यबद्ध तथा अध्यायों में विभक्त होते है। पर वे काव्य नहीं कहलाते। प्रबन्धात्मक कथाएं भी यदि अलंकृत अरसात्मक या इतिवृतात्मक हों तो उन्हें काव्य नहीं कहा जा सकता है।'' 97 यानी कि प्रबन्ध काव्य में अलंकृत शैली, रसात्मकता तथा रोचक कथ का समावेश होता है, इसीलिए तो प्रबन्धकाव्य और कथा काव्य को समानान्तर माना गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रबन्ध काव्य के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि -" प्रबन्ध काव्य में मानव जीवन का पूर्ण दृश्य होता है। उसमें घटनाओं की सम्बद्ध श्रृंखला और स्वाभविक क्रम के ठीक-ठीक निर्वाह के साथ हृदय को स्पर्श करने वाले उसे नाना भावों का रसात्मक अनुभव कराने वाले-प्रसंगों का समावेश होना चाहिए। इतिवृत्तमात्र के निर्वाह से रसानुभव नहीं कराया जा सकता है।'' 98 इस परिभाषा से हमें यह पता चल जाता है है कि रसात्मकता की दृष्टि से प्रबन्ध काव्य के दो भेद होते हैं -- महाकाव्य और खण्डकाव्य।

महाकाव्य

विभिन्न लोगों की भाषा के अवलोकन के द्वारा हम महाकाव्य की एक सर्वमान्य परिभाषा यह निकाल सकते हैं कि " महाकाव्य वह छन्दोबद्ध कथात्मक काव्य रूप है, जिसमें क्षिप्त कथा प्रवाह या अलंकृत वर्णन अथवा मनोवैज्ञानिक चित्रण से युक्त ऐसा सुनियोजित सांगोपांग और जीवन्त लम्बा कथानक हो, जो रसात्मकता या प्रभावान्वित उत्पन्न करने में पूर्ण समर्थ हो सके, जिसमें यथार्थ, कल्पना या सम्भावना पर आधारित ऐसे चरित्र या चरित्रों के महत्वपूर्ण जीवनवृत्त का पूर्ण या आंशिक रूप में वर्णन हो, जो किसी युग के सामाजिक जीवन का किसी न किसी रूप में प्रतिनिधित्व कर सके, जिसमें किसी महत्वपूर्ण, गम्भीर अथवा रहस्यमय और आश्रयोत्पादक घटना या घटनाओं का आश्रय लेकर संशिलिष्ट और समन्वित रूप से जाति विशेष या युग विशेष के समग्र जीवन के विविध रूपों, पक्षों मानसिक अवस्थाओं और कार्यो का वर्णन और उद्घाटन किया गया हो और जिसकी शैली इतनी

गरिमामयी और उदात्त हो कि युग-युगान्तर तक महाकाव्य को जीवित रहने की शक्ति प्रदान कर सके।'' 99

हिन्दी में लम्बे आकार के अनेक सर्गबद्ध काव्यों की रचना हुई है लेकिन उसमें से केवल कुछ ही महाकाव्य की श्रेणी में आता है। वास्तव में हम यह कह सकते हैं कि हिन्दी भाषा के सम्पूर्ण विकास काल में महाकाव्य की रचना के लिए उपयुक्त वातावरण की कमी थी। फिर भी कुछ काव्य ऐसे हैं जिसे हम महाकाव्य कह सकते हैं जैसे कि - आदिकाल का - पृथ्वीराजरासो एवं आल्हाखण्ड, मध्यकाल का- रामचरितमानस एवं पद्मावत, आधुनिक काल का - कामायनी, प्रियप्रवास एवं कृष्णायन आदि को महाकाव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है।

खण्डकाव्य

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने खण्डकाव्य की परिभाषा देते हुए कहा है कि - " महाकाव्य के ढंग पर ही जिस काव्य की रचना होती है, पर जिसमें पूर्ण जीवन न ग्रहण करके खण्ड जीवन ही ग्रहण किया जाता है, उसे 'खण्डकाव्य' कहते हैं। यह खण्ड जीवन इस प्रकार व्यक्त किया जाता है, जिसमें वह प्रस्तुत रचना के रूप में स्वतः पूर्ण प्रतीत होता है।'' 100

आदिकाल और मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में छोटे बड़े सैकड़ों कथात्मक काव्य मिलते हैं, जिसमें खण्डकाव्य के उदाहरण संकलित है, जैसे 'रासो' नामक काव्य ग्रन्थ में वीरगति या नृत्यगीत या लोकगद्य खण्डकाव्य हैं। अगर हम कृष्ण कथा को ले तो कालियदर्शन, गोवर्धन पूजा, रासलीला, रामचरितमानस में -स्वंयवर, अश्वमेघ आदि खण्डकाव्य ही हैं। आधुनिककाल की बात करे तो दिनकर की रश्मिरथी, मैथिलीशरण गुप्त का जयद्रथवध, पंचवटी, सियारामशरण गुप्त का मौर्यविजय, अनाथ, जयशंकर प्रसाद का प्रेमपथिक आदि ,खण्डकाव्य के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं।

मुक्तक काव्य

" मुक्त शब्द में कन् प्रत्यय के योग से मुक्तक शब्द बनता है, जिसका अर्थ अपने आप में सम्पूर्ण या अन्य निरपेक्ष वस्तु होता है ---- ध्वन्यालोक के अनुसार जिस काव्य में पूर्वपर प्रसंग निरपेक्ष रस-चवर्णा का सामर्थ्य होता है वही मुक्तक कहलाता है।''101 यानी कि मुक्तक काव्य, काव्य का वह रूप है जिसमें पद तो कई हो सकते हैं, किन्तु उन पदों का सम्बन्ध एक दूसरे से नहीं होता। सभी पद स्वयं में पूर्ण होते हैं। जैसे कि बिहारी के दोहे। आचार्यों ने अपने में पूर्ण, अन्य निरपेक्ष एक छन्दावली रचना को ही मुक्तक' कहा है। मुक्तक के कई भेद बताए गये हैं जैसे कि-

छन्दोबद्ध, छन्दमुक्त, पद, गीत आदि मुक्तक काव्य के भेद हैं, जिन्हें हम गीत नहीं कह सकते हैं जैसे सोनेट, शोकगीत, सम्बोधगीति, गजल, लोकाश्रित-मुकरी, पहेली, कहावत, ढकोसला आदि।

सन्दर्भ-सूची

1. नवजागरण और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- बलीसिंह, पृ.-1
2. नवजागरण और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- बलीसिंह, पृ.-1
3. नवजागरण और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- बलीसिंह, पृ.-1
4. पाश्चात्य समीक्षा दर्शन- जगदीशचन्द्र जैन- पृ.-149-150
5. नवजागरण और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- बलीसिंह, पृ.-5
6. नवजागरण और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- बलीसिंह, पृ.-3-4
7. नवजागरण के पुरोधा: दयानंद सरस्वती- डॉ. भवानीलाल भारतीय, पृ.-10
8. नवजागरण के पुरोधा: दयानंद सरस्वती- डॉ. भवानीलाल भारतीय, पृ.-10
9. नवजागरण के पुरोधा: दयानंद सरस्वती- डॉ. भवानीलाल भारतीय, पृ.-17
10. नवजागरण के पुरोधा: दयानंद सरस्वती- डॉ. भवानीलाल भारतीय, पृ.-17
11. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास- संपादक- सुधाकर पाण्डेय, भाग-9, पृ.- 2-3
12. भारतीय इतिहास का प्रवाह- पी सरन, पृ.- 532-533
13. भारतीय इतिहास का प्रवाह- पी सरन, पृ.- 538-539
14. नवजागरण और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- बलीसिंह, पृ.-40
15. भारतीय नवजागरण और भारतेन्दु- नर्मद युग का साहित्य- महावीर सिंह चौहान, पृ.83
16. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास-भाग-8, संपादक- विनय मोहन शर्मा, पृ.- 17
17. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास-भाग-8, संपादक- विनय मोहन शर्मा, पृ.- 19
18. महावीर प्रसाद द्विवेदी और नवजागण- रामविलास शर्मा, पृ.- 88-89
19. भारत का इतिहास, खण्ड-ख, - संपादक- टाटा मेकग्राही, पृ.-183
20. आधुनिक भारत का इतिहास- संपादक- आर. एल. शुक्ल, पृ. 147
21. आधुनिक भारत का इतिहास और स्वातंत्र्य संगाम - डॉ. रमणलाल के. धारैया, पृ.- 95
22. आधुनिक भारत का इतिहास- संपादक- आर. एल. शुक्ल, पृ. 148-149
23. आधुनिक भारत का इतिहास और स्वातंत्र्य संगाम- डॉ. रमणलाल के. धारैया, पृ.- 95- 96 , भाग-1
24. आधुनिक भारत का इतिहास और स्वातंत्र्य संगाम- भाग-1, डॉ. रमणलाल क. धारैया, पृ.- 6
25. भारत का इतिहास, भाग-ख, संपादक- टाटा मेकग्राही, पृ.-182-183

26. भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास- बी.एन. लूनिया, पृ.- 516-517
27. आधुनिक भारत का इतिहास और स्वातंत्र्य संगाम- भाग-1, डॉ. रमणलाल के. धारैया, पृ.- 7
28. आधुनिक भारत का इतिहास- संपादक- आर. एल. शुक्ल, पृ. 122
29. आधुनिक भारत का इतिहास- संपादक- आर. एल. शुक्ल, पृ. 124
30. आधुनिक भारत का इतिहास- संपादक- आर. एल. शुक्ल, पृ. 125
31. आधुनिक भारत का इतिहास- संपादक- आर. एल. शुक्ल, पृ. 122
32. भारत का इतिहास-भाग-ख संपादक- टाटा मेकग्राही, पृ.-184-185
33. आधुनिक भारत का इतिहास- संपादक- आर. एल. शुक्ल, पृ. 378-379
34. आधुनिक भारत का इतिहास और स्वातंत्र्य संगाम- भाग-1, डॉ. रमणलाल के. धारैया, पृ.- 17
35. आधुनिक भारत का इतिहास और स्वातंत्र्य संगाम- भाग-1, डॉ. रमणलाल के. धारैया, पृ.- 17-18
36. आधुनिक भारत का इतिहास और स्वातंत्र्य संगाम- भाग-1, डॉ. रमणलाल के. धारैया, पृ.- 18
37. भारतीय सभयता तथा संस्कृति का विकास- बी.एन. लूनिया, पृ.- 517-518
38. आधुनिक भारत का इतिहास: एक नवीन मूल्यांकन- बी. एल ग्रोवर, पृ.- 270-271
39. भारतीय सभयता तथा संस्कृति का विकास- बी.एन. लूनिया, पृ.- 433
40. भारतीय राजनीतिक विचारक - डॉ. पुखराज जैन - पृ. -111
41. भारतीय सभयता तथा संस्कृति का विकास- बी.एन. लूनिया, पृ.- 436
42. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास- 8वां भाग, ((सोलह भागों में) -, संपादक- विनय मोहन-शर्मा, पृ.- 3
43. भारतेन्दु युगीन साहित्य में राष्ट्रीय भावना- डॉ पुष्पा थरेजा, पृ.- 40-41
44. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास-भाग-8, संपादक- विनय मोहन शर्मा, पृ.- 10
45. मध्यकालीन भारत का बृहद् इतिहास-खण्ड-3,जे.एल. मेहता, पृ.-5
46. भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास- बी.एन. लूनिया, पृ.- 265
47. भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास- बी.एन. लूनिया, पृ.- 265-266
48. भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास- बी.एन. लूनिया, पृ.- 271
49. भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास- बी.एन. लूनिया, पृ.- 268

50. भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास- बी.एन. लूनिया, पृ.- 269
51. भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास- बी.एन. लूनिया, पृ.- 276
52. भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास- बी.एन. लूनिया, पृ.- 294-295
53. भक्ति आंदोलन इतिहास और संस्कृति-संपादक-डॉ. कुँवरपालसिंह, पृ.-VIII-8
54. भक्ति आंदोलन इतिहास और संस्कृति-संपादक-डॉ. कुँवरपालसिंह, पृ.-IX-(9-10)
55. भक्तिकाव्य की भूमिका-प्रेमशंकर, पृ.-91
56. भारतीय भक्ति साहित्य- डॉ. राजकमल वोरा, पृ.-109
57. भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास- बी.एन. लूनिया, पृ.-283-284
58. भक्तिकाव्य की भूमिका-प्रेमशंकर, पृ.-148-149
59. भारतीय भक्ति साहित्य- डॉ. राजकमल वोरा, पृ.-117-118
60. लोकजागरण और हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.-127-128
61. भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास- बी.एन. लूनिया, पृ.-356-357
62. भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास- बी.एन. लूनिया, पृ.-355
63. हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ नगेन्द्र, पृ.- 438
64. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1, धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 406
65. हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.310
66. हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.310
67. हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.316
68. हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.310
69. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास- रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ.-174
70. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास- रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ.-175
71. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास-खण्ड-2-डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, पृ.-398
72. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास-खण्ड-2-डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, पृ.-399
73. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1, धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 153
74. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास-खण्ड-2- डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, पृ.-416
75. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास-खण्ड-2- डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, पृ.-416
76. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास- रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ.-161

77. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1, धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 233
78. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास-खण्ड-2- डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, पृ.-452
79. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास-खण्ड-2- डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, पृ.-452
80. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1, धीरेन्द्र वर्मा, पृ.- 444-445
81. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास-16 भागों में- नागरी प्रचारिणी सभा-भाग-13,पृ.-57
82. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास, सोलह भागों में (13वां भाग) नागरी प्रचारिणी सभा - पृ. - 63
83. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास, सोलह भागों में (13वां भाग) नागरी प्रचारिणी सभा, पृ.- 92-93
84. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1, धीरेन्द्र वर्मा, पृ.- 716
85. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1, धीरेन्द्र वर्मा, पृ.- 98
86. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1, धीरेन्द्र वर्मा, पृ.- 99
87. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1, धीरेन्द्र वर्मा, पृ.- 335
88. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1, धीरेन्द्र वर्मा, पृ.- 336
89. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1, धीरेन्द्र वर्मा, पृ.- 121
90. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1, धीरेन्द्र वर्मा, पृ.- 123
91. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1, धीरेन्द्र वर्मा, पृ.- 346
92. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1, धीरेन्द्र वर्मा, पृ.- 346
93. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1, धीरेन्द्र वर्मा, पृ.- 470
94. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1, धीरेन्द्र वर्मा, पृ.- 470-471
95. हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास- डॉ. सभापति मिश्र - पृ. 386
96. हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास- डॉ. सभापति मिश्र - पृ. 387
97. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1, धीरेन्द्र वर्मा, पृ.- 522
98. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1, धीरेन्द्र वर्मा, पृ.- 522
99. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1, धीरेन्द्र वर्मा, पृ.- 627
100. हिन्दी साहित्य कोश, भाग -1, धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 273
101. हिन्दी साहित्य कोश, भाग -1, धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 649